Anand Sangrah

आनन्द संग्रह

वीतराग स्वामी सर्वदानन्द जी
महाराज के उत्तम उपदेश

S- Sarvadanand

राजपाल एण्ड सन्ज़

अनारकली — लाहौर

१॥)

विषय-सूची

मुद्रक—विश्वनाथ एम० ए०, दी आर्य प्रैस लिमिटिड, लाहौर।
प्रकाशक—विश्वनाथ एम० ए० राजपाल एंड संस, लाहौर।

संसार यात्रा

संसार में जिस प्रकार यह बात स्वयं सिद्ध है कि जो यात्री अपने उद्दिष्ट स्थान की ओर मुंह किये हुए है, वह जितने पग सीधे उठाता है उतना ही वह अपने उद्दिष्ट स्थान के निकटतर होता जाता है, उसी प्रकार यह बात निर्विवाद है कि यदि उस यात्री का पग अपने उद्दिष्ट स्थान की ओर जाने के स्थान उल्टा पड़ जाए, तो वह जितने भी पग उठाएगा उतना ही उद्दिष्ट स्थान से दूर होता चला जायगा। ठीक यही अवस्था संसार-यात्रा में जीवात्मा की है। मनुष्य का ध्येय परमेश्वर है अथवा उसके सुख। जिस प्रकार यात्री अपने उद्दिष्ट स्थान पर पहुंचने का यत्न करता है, उसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा को प्राप्त करना चाहता है—प्रत्येक मनुष्य की यह इच्छा है। परन्तु इन सब प्रयत्नों और इच्छाओं के होते हुए भी वह परमेश्वर की प्राप्ति में असमर्थ रहता है, उसे सुख प्राप्त नहीं होता, इसका कारण क्या है ? कारण यह है कि हम परमेश्वर की प्राप्ति का जो मार्ग है उससे उल्टे जा रहे हैं, ठीक मार्ग से दूर जा रहे हैं। यही कारण है कि परमेश्वर और सुख की प्राप्ति के हमारे सम्पूर्ण प्रयत्न निष्फल होजाते हैं। जितना हम सुख की प्राप्ति का यत्न करते हैं उतना ही वह दूर भागता है, और भागे क्यों न, सुख के पास तो हम जब पहुँचें जब सुख की ओर हमारा मुंह हो। जब सुख उसके विपरीत होगा तो फिर यही होगा कि—

सर्वे प्रयत्ना शिथिला भवन्ति

सारे प्रयत्न निष्फल होंगे और एक समय हम इस अवस्था को देखेंगे कि हम सुख और परमेश्वर से बहुत ही दूर होगए हैं।

उस समय हमारी अवस्था उस मरणासन्न मनुष्य की सी होगी जो भूमि पर लेट रहा है और लोग उसे आ आकर पूछते हैं कि क्यों पण्डित महात्मा जी, आप हमें पहचानते हैं कि हम कौन हैं जब वह नहीं बोलता तो उसके पाओं को हाथ लगाते हैं, नाड़ी देखते हैं। जब गति सर्वथा बंद हो जाती है तो कहते हैं अब नहीं सुन सकता। ठीक ऐसी ही अवस्था जीवात्मा की परमेश्वर के मार्ग से उल्टा चलने पर हो जाती है। जीवित अवस्था में देखने की शक्ति मन के साथ मिलकर पहचानने का काम करती थी, अब उसका सम्बन्ध टूट जाने से देखने की शक्ति काम नहीं करती तथा श्रवण-शक्ति नष्ट हो जाती है।

मृत्यु के समय मन में चेतनता आजाती है। जीवात्मा शरीर को छोड़ने के समय ऐसा क्यों करता है? आपने देखा होगा कि जब कभी कोई बड़ा मनुष्य—कलक्टर व छोटा लाट-साहब—किसी स्थान से प्रस्थान करता है तो सहसा ही नहीं चल देते वरंच एक दो दिन तैयारियां करते हैं। पहिले बाहर आकर तम्बू लगाते हैं, मिलने वाले आकर उनसे मिल लेते हैं। सब आवश्यक वस्तुएं तम्बू में एकत्र की जाती हैं, तब प्रस्थान आरम्भ होता है। इसी प्रकार जीवात्मा जब शरीर को छोड़ता है तो वह सम्पूर्ण शक्तियों को एकत्र करता है। कृष्ण भगवान् कहते हैं कि मृत्यु के समय अन्तःकरण जैसी भावनाओं को देखता है उन्हीं से प्रभावित होता हुआ उसी ओर को रुख कर लेता है। आप दुकान पर बैठे हैं, आपके मनमें भावना उत्पन्न हुई कि भवन में जाकर लैक्चर उपदेश सुनें, आप दुकान से उठकर भवन में आगए। इसी प्रकार दूसरे मनुष्य के मनमें विचार हुआ कि नदी पर चलें और वह नदी की ओर चल पड़ा। जिस प्रकार जीवित

पुरुष अपनी भावनाओं से प्रेरित होता हुआ सब काम करता है ठीक उसी प्रकार की क्रिया मृत्यु के समय होती है। जैसे विचार व भावनाएं उसके अन्तःकरण में उत्पन्न होती हैं, उनसे प्रभावित हुआ २ उधर ही चला जाता है।

यह मृत्यु का समय हमारे साथ भी सम्बन्ध रखता है। हम संसार में सदा रहने के लिये नहीं आए, हम को भी कभी इस संसार से विदा होना पड़ेगा। इसके पश्चात् हमारा उद्दिष्ट स्थान क्या है, यदि इस बात का हमको पता नहीं अथवा पता लगाने का हम यत्न नहीं करते तो हमारे समान भूला हुआ और कोई नहीं है। यदि किसी यात्री को पूछा जाय कि कहाँ जाते हो, वह उत्तर दे मुझे पता नहीं, तो इस अन्धाधुन्ध का भी कहीं ठिकाना है भला ? ऐसे यात्री को आप क्या कहेंगे, यही कहेंगे कि वह एक उन्मत्त मनुष्य है।

परमेश्वर हमारा उद्दिष्ट स्थान है। उसकी ओर जाने के लिये आवश्यक है कि हम उन बातों को न करें जो कि परमात्मा की आज्ञा के विरुद्ध हैं। यही ऋषि लोगों का नियम है। ऋषि उसे कहते हैं जिसने परमेश्वर को प्राप्त किया।

ऋषि, मनुष्य और राक्षस

ऋषि, मनुष्य और राक्षस में केवल इसी बात का अंतर है; अन्यथा ऋषि के शरीर पर मोहर नहीं लगी होती, मनुष्य के सिर पर सींग नहीं होते और राक्षस के हाथों पर कोई पहचान का चिन्ह नहीं लगा होता; केवल गुणों के भेद से ही मनुष्यों के यह तीन भेद कहे हैं। ऋषि उसको कहते हैं जो स्वार्थ से रहित होकर केवल सर्वसाधारण के हित के लिये ही काम करे, जिस

का अपना प्रयोजन कुछ भी न हो, उसका पुरुषार्थ केवल लोगों की भलाई के लिए हो। मनुष्य वह है जिसमें लोगों की भलाई के साथ अपना स्वार्थ भी हो। जिसके हृदय में इस नियम की धारणा हो कि मैं मनुष्य समुदाय में रह आप भी सुखी रहूं और लोगों को भी सुख पहुंचाऊं; न उनसे मुझको कोई दुःख पहुचे और न मुझ से उनको; मेरा भी बने उनका भी बने। राक्षस वह है जो अपना ही भला सोचे, दूसरों की हानि व लाभ का कोई विचार न हो। अब इन तीनों में से जो केवल लोगों की भलाई का विचार है वह सर्वोत्कृष्ट आदर्श है, परन्तु ऐसा होना कठिन है। यह विचार कि न अपना बिगड़े न दूसरे का, मध्यम विचार है जो कि उपरोक्त बात से सुगम है। इससे आगे तीसरा नम्बर स्वार्थ में गिना गया है और आजकल यह मात्रा ही बढ़ी हुई है। मेरा रस्सा जाए तो जाए परन्तु दूसरे की भैंस अवश्य मरे, यह भाव बड़ा सुगम है। क्योंकि जिस प्रकार मनुष्य के चारों ओर वायुमण्डल छा रहा है, उसी प्रकार चारों ओर यह बुराई का केन्द्र विद्यमान है। बुराई के लिए कोई तय्यारी की आवश्यकता नहीं है, इसी लिये तो तो परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवः।

कान सुनने के लिये एक साधन है; जो बहरा है वह सुन नहीं सकता। एक नियम है कि जैसे को तैसा दीख पड़ता है, यह कुछ तो ठीक है और कुछ नहीं ठीक। दुष्ट जन को तो सारे दुष्ट ही दिखाई पड़ते हैं परन्तु यह ठीक नहीं कि भले सबको भले दीख पड़ें। जिस प्रकार जब मैं बहरे से बात करने लगता हूँ, तो बहरा जोर से बोलने लगता है, इस लिये कि उसको ऊँचा सुन पड़ता है, दूसरों को भी ऊँचा

सुन पड़ता होगा। इसलिये बुरे मनुष्य के विचार में तो आ जाता है कि सब बुरे हैं। भला मनुष्य भले को भला और बुरे को बुरा समझता है इसलिये वह परमात्मा से प्रार्थना करता है कि हे परमेश्वर! हम कानों से सदैव कल्याण की ही सुनें, नेत्रों से सदा कल्याण को देखें, हे परमेश्वर! हमारे सब अंग दृढ़ रहें जिससे हम इस जगत् में भी सुखी रहें और परलोक में भी सुख पावें। जब वेद मंत्र का ऐसा उपदेश है तो हमें जान पड़ता है कि इस प्रकार का सदाचारी बनने पर परमात्मा और सुख की प्राप्ति का एक मार्ग तो मिलता है। है। अब सोचो कि वह मार्ग कौनसा है?

मन के साथ समस्त इन्द्रियों का सम्बन्ध है। यह सब मन के आधीन हैं, मन की उपस्थिति में यह सब काम करती हैं, और अनुपस्थिति में क्रियाशून्य रहती हैं। मन के संयोग न होने पर न कान सुन सकता है न आँख देख सकती है। आप बाज़ार में किसी विचार में लीन हुए घूम रहे हैं, पीछे से आपको किसी ने बुलाया परन्तु आपने नहीं सुना क्योंकि आपका मन दूसरी ओर था। मन के बिना कोई इन्द्रिय काम नहीं करती। मन और इन्द्रियों के लिये मनुष्य बड़े कठिन से कठिन कर्म्म कर सकता है इसलिये मन को शुभ कर्म्मों में डालना तो उद्दिष्ट स्थान की ओर जाना है और उसे कुकर्म्मों में लगा देना अपने लक्ष्य से विपरीत चलना है। इस संसार में अन्याय हो रहा है? परमात्मा किसी को भी दुख नहीं देते वे तो सब को सुख ही देते हैं। सूर्य्य का काम तो प्रकाश व उष्णता देने का है, परन्तु एक पौदे पर तो उसके प्रकाश और उष्णता का यह प्रभाव पड़ता है कि वह सूख जाता है और दूसरा

हरा भरा हो जाता है तो क्या इसमें सूर्य्य का दोष है, कदापि नहीं; वरंच जिस पौदे की जड़ में जल और नमी है वह फूलता है और जो सूखा है वह प्रकाश और उष्णता को अनुकूल न पाकर सूख जाता है। इसी प्रकार जो मन से सदैव भलाई की ओर जाता है जिस अन्तःकरण में भलाई का बीज विद्यमान् है, जो सच्चाई से प्रेम रखता है, वह संसार में सुख प्राप्त करता है, और जिसमें बुराई और कपट भरा है वह उसी व्यवस्था के अनुसार दुख उठाता चला जाता है।

आप फ़ारसी की पुस्तकों को पढ़ें, अंग्रेज़ी और संस्कृत के ग्रन्थ देखें, सब एक मत होकर किस बात का वर्णन करते हैं, सब का उद्देश्य एक ही है कि—

बुरे कर्म्मों से हटे रहो !

सब शास्त्रों की यही मर्य्यादा है, परन्तु संसार की दशा आजकल क्या है, दुःख से तो बचना चाहते हैं परन्तु दुःख के कारण को छोड़ना नहीं चाहते। सुख की प्राप्ति तो चाहते हैं परन्तु सुख के कारण को प्राप्त नहीं करते। कर्म तो करते हैं दुःख प्राप्ति के, परन्तु चाहते हैं सुख, यह कैसे होगा? इसलिये जो मनुष्य बुरे कर्म्मों से हट जाता है वही सुख पा सकता है, और दूसरों के भी कल्याण का हेतु होता है। क्योंकि वह मनुष्य जिस सोसाइटी में रहता है और जो वस्तु उसके पास होगी वही बांटेगी। यदि बुराई उसके पास होगी तो वह सोसाइटी में बुराई फैलाएगा और यदि भलाई है तो भलाई फैलाएगा। यह भी नहीं हो सकता कि वह दूसरों के साथ बुराई करे और उनसे आशा भलाई की रखे। लुकमान से उसके स्वामी ने कहा कि गेहूँ खेत

में बो दो, उसने जाकर बाजरा बो दिया। स्वामी ने कहा कि बाजरा बोकर गेहूँ कैसे उगेंगे ? तो लुकमान ने उत्तर दिया, 'श्रीमान् ! यदि बाजरे के बीज से गेहूँ नहीं उत्पन्न हो सकते तो आप बुराई का बीज बोकर भलाई की आशा कैसे रखते हैं।' आपके मन में अथवा मेरे मन में यह विचार आ सकता है कि हम तो कोई बुराई नहीं करते, यह क्यों ? इसलिये कि मुझे अपना दोष प्रतीत नहीं होता। सच्चे मार्ग पर आने के लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी बुराइयों को जाने अन्यथा छोटी २ बुराईयों का भी लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

इसलिये हे मनुष्य ! तू अपने दोषों पर दृष्टि डाल। निर्बलता को समझने प्रकृति की डाल, यह धार्मिक ग्रन्थों का उपदेश है। परन्तु हम अपनी दुर्बलता को ही बल समझ बैठे हैं। दुर्बलता भारतवर्ष की प्रकृति में मिल गई है। ज्यों ज्यों भारतवर्ष दुर्बल होता जाता है त्यों त्यों ही दुबलापन एक फ़ैशन बनता चला जाता है. यदि हम दुर्बलता को अपना भूषण समझ लेंगे तो हम उसको क्योंकर छोड़ सकते हैं ?

जिस समय इस वर्तमान जगत् को परमेश्वर ने बना कर सच्चाई और झूठ में अन्तर डाल दिया तो तुमको उचित है कि सत्य से प्रेम और झूठ से घृणा करो। अब जो मनुष्य इसके विरुद्ध करेगा वह अपने मार्ग में स्वयं संकट उत्पन्न करेगा। मनुष्य को सत्य से इस प्रकार प्रेम करना चाहिये जिस प्रकार कि ऋषि दयानन्द करते थे। सभा लगी हुई है, ऋषि के मुँह से एक अशुद्ध शब्द निकल गया। एक छोटासा बालक उठकर कहता है, महाराज ! यह शब्द ऐसा नहीं है। ऋषि स्वीकार कर लेते हैं कि वास्तव में यह शब्द मेरे मुख से अशुद्ध निकल गया था। यदि

ऋषि चाहते तो उस अशुद्ध को भी शुद्ध कर सकते थे, परन्तु सत्य के प्रेमी ऋषि ने ऐसा करना उचित न समझा क्योंकि ऋषि जानते थे कि यदि झूठा हठ आ गया तो अन्तःकरण पर झूठ की छाया पड़ जायगी, इस अपनी थोड़ी-सी मान-हानि पर सत्य के साथ घृणा क्यों करूँ ? सत्य के साथ प्रेम रखने के कारण वह तो ऋषि बन गये, परन्तु दूसरी ओर अनुभूति-स्वरूप नाम के एक वृद्ध आचार्य्य थे, बुढ़ापे के कारण उनके मुख से पशु शब्द के स्थान में पुंशु निकल गया। लोगों ने कहा कि यह तो अशुद्ध शब्द है, बस इसपर वे मान-प्रतिष्ठा के कारण हठ पर आ गये और पूरे तीन मास गृह से नहीं निकले। अन्त में एक ऐसा ग्रन्थ बनाया जिसमें पुंशु शब्द को ठीक सिद्ध किया। परन्तु वह भी अशुद्ध सिद्ध हुआ, परन्तु उनका मन तो अभिमान और हठ के कारण मलीन हुआ। इस लिये मनुष्य को सर्वदा अपने मन को शुद्ध रखना चाहिये और सत्य के साथ प्रेम रखना चाहिये। बुरे कर्म्मों से बचने के लिये तीन वस्तुओं की आवश्यकता है—

मन में विमलता, जीवन में सरलता और शरीर में सफलता

यदि आपके शरीर में बल, मन साफ़, जीवन पवित्र, सरल और सादा है तो आप सच्चे हैं। यदि आपका जीवन पवित्र नहीं है, भ्रष्ट है और शरीर बलवान् नहीं है तो आप बुरे कर्म्मों से नहीं बच सकते हैं। परन्तु वह तब हो सकता है जब आप वेदों के उपदेश पर चलें। वेद का उपदेश है—

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां....

हे मनुष्य ! तू अपने शरीर को यज्ञ बना दे, अपने प्राण को यज्ञ बना दे अर्थात् पुरुषार्थ से अपने कर्ण, नेत्र आदि

इन्द्रियों को कार्य्यरूप में परिणत कर, केवल शिक्षा सुनने से ही काम न चलेगा।

स्वामीजी महाराज लिखते हैं, संसार का उपकार करना आर्य्य-समाज का मुख्य उद्देश्य है। अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। इसमें ऋषि ने सब से पहला नम्बर शारीरिक उन्नति को दिया है, क्योंकि जिसका शरीर दुर्बल है वह संसार का तो क्या, अपना भी उपकार नहीं कर सकता और बलवान् उसे दबा लेते हैं। जिनके आत्मा बलवान् और शरीर पुष्ट हों वे ही ऐसे कष्ट के समय नेकी तथा सदाचार का निदर्शन दूसरों के सन्मुख रख सकते हैं और इसके लिये आवश्यक है कि मनुष्य सब प्रकार की विषय-वासनाओं से बचे। जो मनुष्य विषय-वासनाओं में लगा रहता है वह कभी हृष्ट-पुष्ट और बलवान् आत्मा वाला नहीं हो सकता।

अकड़ ऐंठ अभिमान में, गए हज़ारों वर्ष।
आओ प्रिय मिल बैठिए, जो बढ़े हृदय में हर्ष॥

आओ! जुदाई और द्वेष के सिर राख डालो। मेल मिलाप में आनन्द हो जायगा, भुजाओं में बल आ जायगा, शरीर में शक्ति आ जायगी। यही मार्ग है सुख और शान्ति का! भावी सन्तति को बिगड़ने न दो, प्रेम और प्रीति बढ़ाओ, परमात्मा तुम्हारा कल्याण करेगा!

सत्संग की महिमा

वर्षा ऋतु से पूर्व लोग आम तो चूसते हैं परन्तु स्वाद नहीं आता क्योंकि उनमें अभी मिठास नहीं आई, परन्तु जब वर्षा हो जायगी वे स्वादिष्ट हो जाएंगे। यही नियम मनुष्य जीवन का है। सत्संग रूपी अमृत को पाकर मनुष्य धर्मात्मा बन जाता है, कुसंग से केवल अपना आप ही नहीं वरंच जन समूह के नाश का कारण होता है। जिस प्रकार वायु मिट्टी को ऊपर लेजाता है परन्तु जल उसको कीच बनाता है, ठीक इसी प्रकार सत्संग मनुष्यों को ऊपर उठाता है और कुसंग मिट्टी में मिलाता है।

किस तरह कुसंग मनुष्य को गिराता है, इसका दृष्टान्त अभी मुझे रेल में मिला। एक मनुष्य गाड़ी में सिगरेट पीना चाहता था, वह दियासलाई सिगरेट को लगाता परन्तु वह वायु से बुझ जाती। दो तीन बार उसने ऐसा किया परन्तु काम न बना, अन्त में वह टट्टी में गया और वहाँ जाकर उसने सिगरेट को जलाया। टट्टी जाते समय तो लोग नाक और मुंह पर कपड़ा रखते हैं परन्तु सिगरेट का कुसंग उसको टट्टी में ले गया।

शास्त्रों में कहा गया है कि सत्संग कुसंग से रहित हो कर करो। पन्द्रह सेर हलवा में यदि एक तोला विष मिला दिया जाय तो सारा हलवा विष हो जायगा, परन्तु एक तोला विष में पन्द्रह सेर हलवा मिला देने से भी विष हलवा नहीं बनेगा, खोटे का कुसंग भले मनुष्य पर भी विपत्ति ले आताा है।

हंस और काक एक वृक्ष पर इकट्ठे रहते थे। काक बड़ा ही कुटिल जन्तु है, वह मन में हंस से द्वेष रखता था और प्रगट

में उसकी मित्रता का दम भरता था। एक दिन दोपहर के समय एक यात्री वृक्ष के नीचे आकर सो गया। कुछ समय के पश्चात् उस पर धूप आगई। हंस ने देखा कि थका मांदा यात्री पड़ा है धूप की गर्मी से वह शीघ्र जाग उठेगा, उसने अपने परों को पसार कर उस पर छाया कर दी, यात्री को विश्राम मिल गया। काक ने भी उसको देखा और मन में सोचा कि आज हंस से प्रतिकार लेने का अच्छा अवसर है. उसने हंस के नीचे होकर यात्री के मुंह पर बींट कर दी और उड़ गया। गर्म गर्म बींट का पड़ना था कि यात्री की निद्रा खुल गई और उसने देखा कि हंस पंख पसारे वृक्ष पर बैठा है। उसे क्रोध आया कि इसने मेरे मुंह बींट कर दी है, तुरन्त उठा और उसे बंदूक मारकर मार दिया। आपने देखा कि किस प्रकार कुसंग के कारण भलाई का बदला बुराई मिला।

सत्संग की संसार में बड़ी न्यूनता हो रही है। लोगों के हृदयों में धर्म के लिये वह श्रद्धा नहीं रही जो प्राचीन काल में थी। आप उपदेश सुन रहे हैं, तनक सी खड़खड़ाहट कहीं हो, आप भागने को तय्यार हैं। परन्तु एक समय महात्मा बुद्ध का उपदेश हो रहा था, इतने में भूचाल आगया, कई मकान गिर गए परन्तु जो लोग उपदेश सुन रहे थे उन्होंने हिलने का नाम नहीं लिया।

एक कवि ने सत्संग और कुसंग पर बहुत अच्छा कहा है:—

सत्संग और कुसंग में बड़ा अन्तरा जान।
गाँधी और लोहार की देखो बैठ दुकान॥

लोहार की दुकान पर उष्ण लौह की चिंगाड़ी से आप बच नहीं सकते, इसी प्रकार गांधी की दुकान पर बैठने से चाहे आपने इतर ना ही लेना हो, सुगन्धि अवश्य ही आपके मस्तिष्क को

सुवासित करेगी। यही सत्संग और कुसंग में अन्तर है।

सत्संग से लाभ

सत्संग से क्या लाभ होता है, इसका शास्त्रकारों ने बड़े विस्तार से वर्णन किया है, परन्तु एक दो साधारण बातें बतलाकर मैं अपने वक्तव्य को समाप्त करूंगा। पहली बात—

"जाड्यम् धियो हरति"

सत्संग बुद्धि को निर्मल और सूक्ष्म बना देता है। लोग पूछते हैं कि परमात्मा दिखाई क्यों नहीं देता? उपनिषदों में बतलाया है कि वह दिखाई देता है परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से। खांड मिट्टी में मिल गई, आप से वह पृथक् नहीं हो सकती, क्योंकि आपके पास इतना सूक्ष्म यन्त्र नहीं, परन्तु चोंटीआं इसको क्षण भर में पृथक् कर देंगी। ऐसी ही सत्संगी पुरुष की बुद्धि निर्मल हो जाती है।

दूसरा लाभ सत्संग से यह होता है :—

"सिञ्चति वाचि सत्यम्"

सत्संग से वाणी में सचाई आ जाती है। इसलिये कहा है—

जहां सच वहां आप, जहां झूठ वहां पाप।

आजकल महात्मा शब्द की बड़ी मिट्टी खराब हो रही है। परन्तु शास्त्र बतलाते हैं कि जिस पुरुष का वाणी और कर्म एक है, वह सच्चा महात्मा है। जिसके मन में कुछ और, दिखलावे के लिये कुछ और, वाणी में कुछ और, तथा अपने स्वार्थ के लिये कुछ और होता है, वह दुरात्मा होता है। अब आप सोच ले कि इनमें से कितने महात्मा हैं? थोड़ी थोड़ी बात बात पर झूठ बोल देते हैं, सच और झूठ की पहचान नहीं रही

यह सारी बुराईयां सत्संग से दूर हो सकती हैं।

लोहा जल में डूब जाता है परन्तु काष्ठ के साथ लगने से तैरने लगता है। इसी प्रकार बुरे से बुरा मनुष्य सत्संग से भला बन जाता है। बाल्मीक का दृष्टाँत आपके सन्मुख है। वह बाल्मीकि जो दिन रात डाके मारा करता था, एक साधु के सदुपदेश से सुधर गया, और जब तक संस्कृत की एक भी पुस्तक शेष हैं उसका नाम अमर रहेगा। कहा है—

'सत्संगति कथय किं न करोति पुंसाम्'

उपदेशक प्रत्येक व्यक्ति पर किसी विशेष समय पर अपना प्रभाव डालता है। सहस्रों उपदेश सुने जाओ, कुछ फल नहीं होता, परन्तु एक समय ऐसा होता है जब साधारण सी बात से मन पर चोट लग जाती है और उसका प्रभाव हो जाता है। अभी मैं मिट्टाटिवाणा में गया। उपदेश करते हुए साधारण रीति से मैंने माँस-भक्षण का निषेध किया और कहा कि इसका खाना धर्म के विरुद्ध है। उसी समय वहाँ एक रईस खड़ा हो गया और हाथ जोड़ कर कहने लगा कि महाराज मैं आज से मांस खाना छोड़ता हूँ और साथ ही हुक्का भी छोड़ता हूं। परन्तु यहाँ कितना ही माँस के विरुद्ध कहा गया, असर नहीं हुआ। परन्तु समय आवेगा जब यही उपदेश इनके आत्मा पर भी चोट लगायेगा।

एक पुरुष की दूसरी स्त्री सदैव उसको पहली स्त्री के पुत्र के विरुद्ध भड़काया करती थी। उसका विचार था कि यदि यह मर जाये तो मेरा पुत्र एक दिन सारी सम्पत्ति का अधिकारी होगा। नित्य की कहा-सुनी से पति पर असर होगया और वह

एक दिन अपने पुत्र को मारने के लिये खेत में साथ लेगया। अब उस को साहस न होता था कि वह अपने आत्मज को किसी छुरी व तलवार से मार दे। चाहता यह था कि किसी प्रकार वह हल के नीचे आजाय और बिना किसी प्रकार की निर्दयता के मर जाय। छोटा सा बालक उसके आगे पीछे फिरता और उसका पिता हल को बार बार उसकी ओर लाता। घण्टा डेढ़ घण्टा इसी प्रकार करता रहा कि इतने में उसका हल एक छोटे से पौदे से जा लगा। बालक चिल्लाया—पिता जी! हल को इस ओर मत लाओ। पिता ने कारण पूछा, उसने बतलाया कि नन्हा-सा पौदा उखड़ जायगा। पिता ने कहा, फिर क्या होगा और पैदा हो जायगा? बालक ने कहा, दूसरे का उगना निश्चित नहीं है परन्तु जो उग चुका है वह तुम्हारे हल से उखड़ जायगा। इन शब्दों से पिता के चित्त पर बड़ी गहरी चोट लगी और उसने अपने पुत्र को उठा कर गले से लगा लिया और घर आकर अपनी स्त्री को ऐसा डाँटा कि फिर उसने कभी बालक के विरुद्ध न कहा।

एक और उदाहरण देकर फिर आगे चलता हूँ। एक डाकू सदैव मुसाफिरों को मारा करता था और उनका माल असबाब लूट लिया करता था। एक दिन एक महात्मा पुरुष घोड़े पर सवार उधर से जा रहा था। डाकू ने कहा कि अपना घोड़ा मुझे देदो और यदि तुमने कहीं दूर पहुंचना है तो मेरा ऊँट तुम लेलो, परन्तु वह न माना। तब डाकू ने कहा कि अब तुम सावधान रहना, मैंने यह घोड़ा अवश्य ले लेना है। यह कहकर वह दूसरे रास्ते से होकर रोगी साधु का वेष बना कर रास्ते में पड़ गया और हाय हाय करने लगा। इतने में वह महात्मा भी वहां पर आ पहुँचा। साधु को इस प्रकार तड़पता देखकर उससे न रहा गया, उसने साधु

से पूछा कि आप को क्या कष्ट है ? उत्तर मिला कि मैं दर्द से मर रहा हूँ। महात्मा ने कहा कि आप मेरे घोड़े पर चढ़ जाएं,मैं आपको हस्पताल में छोड़ आता हूँ। साधु ने कहा कि मुझसे हिला नहीं जाता। महात्मा ने उसे अपनी पीठ पर चढ़ाकर घोड़े पर बैठा दिया। ज्योंही वह घोड़े पर चढ़ा, उसको एड़ी लगाई और महात्मा से पचास गज़ दूर हो अपने वास्तविक वेष में आकर कहा, क्यों भाई, घोड़ा ले लिया कि नहीं। उस समय तो ऊँट लेकर भी घोड़ा नहीं देते थे। उसने कहा, निस्सन्देह तुमने घोड़ा ले लिया और उसे वापिस भी नहीं मांगता, परन्तु एक बात मेरी अवश्य मानना। डाकु ने कहा वह क्या ? उत्तर दिया कि किसी को कहना नहीं कि हमने साधु का वेश बनाकर घोड़ा लिया है वर्ना नेकी का दरवाज़ा सबके लिये बन्द हो जायगा, अच्छे से अच्छे पर भी लोग डाकू होने की शंका करेंगे। सुतरां इन शब्दों ने डाकू के हृदय पर चोट लगा दी और वह हाथ बांधकर खड़ा हो गया। घोड़ा वापस दे दिया और कहा कि मुझे कुछ और भी उपदेश कर जाओ। इसीलिये उपदेश हर समय और हर स्थान पर दिया जाता है, न जाने किस समय किस पर प्रभाव पड़ जावे ?

बर्मा देश की बात है। वहां एक पुरुष का युवा पुत्र मर गया। तीन चार दिन निरन्तर उसको रोता पीटता देखकर उनके कुछ पड़ोसी आए और उनसे अपना रुपया बड़ा ज़ोर देकर मांगने लगे। वह आश्चर्य में था कि एक तो पुत्र के मरने का दुःख और दूसरा इन रुपया मांगने वालों की ओर से दुःख। उसने कारण पूछा, उत्तर मिला कि तुम रुपया से मुकर जाने वाले प्रतीत होते हो, परमात्मा ने तुम्हारे पास वह लड़का अमानत के तौर पर भेजा था, उसको आवश्यकता हुई उसने अपनी अमानत वापस

लेलो, अब तुम तीन चार दिन से रो रहे हो। जब परमात्मा की अमानत देने पर तुमने इतनी दुहाई मचाई है तो हमारी अमानत तुम क्यों देने लगे हो? यह कहना था कि सारा परिवार चुप हो गया, उन्हें शान्ति आ गई; यह है सत्संग। आवश्यकता है कि फिर से तुम लोग सत्संग बढ़ाओ।

आर्य-समाज ने संसार को सत्संग के झंडे तले लाना था, परन्तु यह अभागा स्वयमेव घरेलु झगड़ों में फँस गया। जिधर जाओ इसके आपस के झगड़ों की चर्चा सुन पड़ती है। परन्तु स्मरण रखो आर्यसमाज बड़ी भारी विपत्ति को बुला रहा है, निश्चय रखो, इस पर घोर विपत्ति आयगी और उस समय समस्त परस्पर विरोधी शक्तियां मिल जायेंगी, परन्तु उस मेल से कुछ न बन सकेगा।

बंगाल में एक बार जल का एक भारी बाढ़ आया। बहुत से मकान, अनेकों मनुष्य और बहुत से पशु बह गये। परन्तु जल के मध्य में एक ऊँचे स्थान पर एक नेवला. सर्प, गाय, सिंह, बिल्ली. कुत्ता और एक अजगर, एक मनुष्य और इसी प्रकार के कई एक विरोधी जन्तु इकट्ठे हो गए। अब नेवला सर्प की ओर आंख नहीं उठाता, सिंह गाय की ओर नहीं देखता. अजगर मनुष्य की ओर नहीं लपकता, विपत्ति के समय उन सबका द्वेष-भाव दूर हो गया था, परन्तु इस मेल मिलाप से कुछ लाभ नहीं क्योंकि सबकी शक्ति नष्ट हो चुकी है।

इसी प्रकार आने वाली विपत्ति के समय यदि आर्यसमाज की पार्टियां आपस में मिल बैठीं तो इससे क्या लाभ? उनके घरेलु झगड़े तो आर्य्यसमाज को शनैः पहले ही निर्मल बना

देंगे। इसलिये आओ, अब भी मिल जाओ और इस विपत्ति को न बुलाओ।

कैसी पुस्तकों से सत्संग किया जाय?

सत्संग महात्माओं के वचनों द्वारा ही नहीं होता उनके लेख द्वारा भी हो सकता है। एक राजा का मन्त्री छः मास की छुट्टी लेकर बन में चला गया। वहां से उसने कुछ समय पश्चात् राजा को पत्र लिखा कि मैं शान्ति की गंगा में नित्य स्नान करता हूँ और महामुनि पतञ्जलि और गौतम से सत्संग करता हूँ। राजा को आश्चर्य हुआ कि पतंजलि और गौतम अब कहां? यह उसने झूठ लिखा है। वह स्वयं उससे मिलने के लिये गया, जाकर देखा तो उसका मन्त्री वन में एक कुटिया बनाकर वास कर रहा है। एक दो दिन उसके पास रह कर राजा ने पूछा कि यह बात तो ठीक है कि आप शान्ति की गंगा में नित्य स्नान करते है, परन्तु पतंजलि और गौतम का संग कहाँ? मन्त्री ने तुरन्त आले में से योग और न्याय शास्त्र निकाल कर राजा के सन्मुख रख दिये, और कहा कि बतलाइये आप पतञ्जलि और गौतम से क्या पूछते हैं? यह है पुस्तकों का संग, परन्तु आजकल के नवयुवक नावल और इसी प्रकार की अन्य पुस्तकों को पढ़कर अपने बल और वीर्य्य का नाश कर रहे हैं। सदैव ऐसी पुस्तकों को पढ़ो जिनसे जीवन बनता है।

एक महात्मा ऋषि दयानन्द ने सत्संग लगाया, उसी का फल है इस समय कई स्थानों पर सत्संग हो रहा है। यह

सत्संग ऋषि दयानन्द का सत्संग है। गाड़ी ऐञ्जिन नहीं बन जाती, परन्तु ऐञ्जिन के साथ लगने से गाड़ी की गति बहुत तेज़ हो जाती है। इसी प्रकार हम यदि ऋषि न भी बन सकें तो ऋषियों के सत्संग से हमारे धर्मात्मा बनने में सन्देह नहीं रहता। इसलिये हमें चाहिये कि ऋषि दयानन्द के पीछे चलें, इससे आपका यश होगा और आने वाली सन्तान सुधरेगी।

यज्ञ की भावना

सब से पहले एक बात समझ लो, तो मेरे भाव को फिर आप भलीभान्ति जान जाएंगे। समुद्र के ऊपर बहुत से जहाज़ चलते हैं, एक को तूफ़ान ने घेर लिया, वह अपने मार्ग से दस बीस मील दूर किसी दूसरी ओर भटक गया। जब तूफान शान्त हो गया तो उसके कप्तान को क्या सोचना समझना चाहिये? उसका पहला कर्त्तव्य यह है कि मेरा जहाज़ जिस स्थान पर था वहां से कितनी दूर हट गया है? यदि इस बात को ठीक जान लिया तो अपने उद्देश्य पर पहुंच गया और जो बिना विचारे जहाज़ चला दिया तो सम्भव है कि मार्ग पर भी आ जाय और यह भी सम्भव है कि सैंकड़ों मीलों की भूल कर जाय।

भूले हुए जहाज़ के केन्द्र की स्थिति को पहले समझना, फिर चलाना होता है। इसी प्रकार संसार-सागर में भूली हुई जातियां हैं। यदि जातियां यह न देखें कि कहां से भूली थीं, यदि इसका विचार नहीं करती तो भटकती हैं, सहस्रों वर्षों का प्रयत्न भी एक पग आगे नहीं बढ़ा सकता। प्रयत्न, धन का खर्च और सैंकड़ों उपायों का फल कुछ नहीं निकलता। इसलिये प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक जाति का यह कर्त्तव्य है कि अपनी स्थिति पर गम्भीर विचार करे और सोचे कि उसमें क्या दोष हैं, क्या त्रुटियां हैं—तभी कल्याण होगा।

ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश में बताया था कि "जब भाई भाई से से लड़े, वैमस्य हो जाय तो वहां नाश होने के सिवाय और क्या आशा है" दुख है तो यह कि जिन्होंने प्रेम सिखलाना था उनके विचारों में एकता नहीं है। हम में ऐसे वृद्ध नहीं दीख पड़ते जो इस उलझन को खोल दें, यह निराशा है।

स्वामी जी कहते हैं, महाभारत में दुर्योधन के दुष्ट भाव से परस्पर युद्ध हुआ और भारत देश में वैर-भाव फैला और आज तक चला आता है। पता नहीं इसका पीछा कब छोड़ेगा ? अथवा रसातल को पहुंचा देगा।

पचास वर्षों में आर्य्यसमाज के प्रचार से ऋषि दयानन्द के विचारों ने संसार में तो पल्टा दे दिया। जिन ईसाई और मुसलमानों की यह आशा थी कि एक शताब्दि में हिन्दू जाति को हम अपने अन्दर बांट लेंगे आज वे घर के अन्दर विचार करते हैं कि आर्य समाज हमको भी छोड़ेगा या नहीं ?

फिर यदि आर्य्यसमाज में अनैक्य की ज्वाला बढ़ रहा है, फिर तो शेष क्या रहा ? इस वैर-भाव को ही तो उठाना था, शेष कौनसी वस्तु यहां नहीं थी, परन्तु स्वयं वैर में पड़ गए। यह है निराशा की बात और सब आशा ही है।

अब देखना यह है कि हमारी भूल कहां पर है ? केवल एक शब्द को भलीभाँति समझ लो तो सब पता लग जायगा।

देखो एक "यज्ञ" शब्द आता है। जहां यज्ञ परमात्मा का वाचक है, दूसरे स्थल पर पुरुष के साथ मिले हुए आत्मा का नाम यज्ञ है, तीसरे स्थान पर यज्ञ शब्द शुभ कर्मों का वाचक है। एक और मंत्र में यज्ञ शब्द आया है जहां पुरुष के सुधारक

वाचक है। फिर पितृयज्ञ देवयज्ञ में कर्म का वाचक कहा है। बलवान् आत्मा बलवान् शरीर को चाहता है, आप अपने आप को यज्ञ बनाने का यत्न करो, फिर आप उस यज्ञस्वरूप परमात्मा से मिल जाओगे।

वेदमन्त्र कहता है—"आंख को यज्ञ बनाओ"। एक कवि ने कहा है कि "हे भगवन्! दूसरे के अपवाद करने से, दूसरे की निन्दा करने से मुख में दोष आ जाता है, नेत्र स्त्री पर कुदृष्टि डालने से दूषित हो जाता है और चित्त दूसरे की हानि सोचने से दूषित हो गया, मार्ग सब बिगड़ गए, फिर मनुष्य यज्ञ कैसे बना? परमात्मा से इस प्रकार भेंट नहीं हो सकती। आंख से देखकर कैसे दोष उत्पन्न होते हैं? एक जन्तु आप के सामने से जाता है, एक मनुष्य उसे देखकर सोचता है कि परमात्मा की सृष्टि में कैसे सुन्दर जन्तु हैं। दूसरा सोचता है कि इसका मांस बड़ा स्वादिष्ट है। भाव दोनों के भिन्न भिन्न हैं, और इसी से कार्यों में भूल हो जाती है। मनु जी कहते हैं, जब मनुष्य का भाव अच्छा नहीं तो चाहे वेद पढ़ लो, यज्ञ करलो, सब दूषित हैं। यदि भाव में सच्चाई है, तो सब कुछ ठीक है।

फिर कहा है कि यज्ञ को यज्ञ-रूप बनाओ अर्थात् अच्छे कर्मों को भी यज्ञ बनाओ। ज़िला बदायूं में एक नकलनवीस रिश्वत लेता था। उसने आर्यसमाज के सत्संग से घूस लेना छोड़ दिया। परन्तु उसने किया क्या कि काम करने वालों से बोलता ही नहीं। उसके अन्दर अभिमान आ गया कि मैं घूस नहीं लेता। निकाला तो कुत्ते को और बाँध लिया गधे को। उचित तो यह था कि बोलता सभी से, परन्तु घूस लेने वालों की न्याईं घूस न लेता।

इस प्रकार करता तो संसार को अच्छा आदर्श देता। इसलिये कहा है कि भले कर्मों से जो बड़ाई होती है, उसे भी निष्काम और ईश्वर के अर्पण कर दो।

अपने आप को यज्ञ बनाओ। इसी लिये संध्या करने का समय रखा हुआ है। श्रद्धा का तन्तु मृत्यु से अभय कर देता है, बलवान् बना देता है, इसलिये आप सायं प्रातः अपने आप को यज्ञ बनाने का यत्न करो। यह दोनों काल विचार के लिये रखे हुए थे। सूर्य की ओर क्यों बैठें? संकेत से बतलाया है कि हे मनुष्यो! तुम विद्या और प्रकाश की ओर खड़े रहो। यदि प्रकाश की ओर पीठ देदी तो छाया सामने होगी, तुम्हारे सामने फिर प्रकाश नहीं प्रत्युत अन्धकार होगा। सायंकाल फिर सूर्य की ओर ही मुख करो और बतलाओ तो सही, जब कभी कोई मित्र आता है तो उसकी अगवानी के लिये उसकी ओर मुख करते हो अथवा पीठ देते हो। ऐसे ही जब गाड़ी आती है तो सब उसकी ओर ही देखते हैं और जब जाती है तो भी लोग उसी की ओर देखते हैं। फिर सायंकाल और प्रातःकाल ही संध्या क्यों ?

देखो इसको समझो—

जो प्रश्न कहीं सिद्ध नहीं होता वह अलजबरा की समानता की श्रेणी में सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार सांझ और सवेरा समानता की श्रेणी के समय हैं। किसी के स्वत्व का हनन न करना समानता है। एक मनुष्य को घोड़े ने पड़ाव पर पहुंचा दिया, अब सवार का कर्त्तव्य है कि अपने खाने पीने का प्रबन्ध पीछे करे पहले घोड़े के चारे का, यह है समानता।

संसार से वैर-विरोध हट जाएंगे यदि आपके मन में समानता का भाव आ जायगा। उपनिषद् में लिखा है कि मनुष्य के

शरीर में दो शक्तियां हैं, रयी और प्राण। दिन के समय प्राण की शक्ति बढ़ती है, रात्रि को रयी की बढ़ती है। रयी की शक्ति रात्रि को बढ़ती रहती है, और प्रातःकाल को रयी और प्राण की शक्ति सम हो जाती है, वैसे ही सायंकाल को दोनों शक्तियों के सम हो जाने से जो सोचो, सोच लोगे। परन्तु सोचे कौन, उस समय तो उठता ही कोई नहीं।

जो जहाज़ चलते हैं उनका नियम है, वहां एक कम्पास होता है उसकी सुई हिला दो वह फिर भी ध्रुव की ओर हो जायगी। उसके बनाने वाले ने चाहे कोई नियम रखा हो, परन्तु योग के जानने वाले कहते हैं, कि जितने तारे हैं सब चलायमान हैं और ध्रुव के गिर्द घूमते हैं और वह खड़ा रहता है, इसलिये कम्पास की सूई इस ओर ही ठहरती है।

चित्त की वृत्ति भी सुई है। यह किधर ठहरे ? जो स्थिर-स्वभाव परमात्मा है, जब उधर जायगी तो ठहर जायगी। जगत् के पदार्थ तो चलायमान हैं, वहां ठहर नहीं सकती। एक देवी की ओर आँख उठाने से बुरा भाव उत्पन्न हो गया तो क्या समझते हो कोई बिकार न लायेगा, अवश्य लायेगा। चित्त के स्थिर और समान न रहने से भारी कुकर्म होते हैं। इसीलिये कणाद ऋषि ने नियम बतलाया है कि अविद्या मनुष्य से सब प्रकार के पाप करवाती है, और यह इन्द्रियों के मार्ग से संग दोष से आती है।

इन्द्रियों को वश में लाना कठिन है, और सब काम सुगम हैं। एक कमान्डर इन् चीफ़ सेना को जीतकर आया और एक कन्या के रूप को देखकर मोहित हो गया। वह कन्या सदाचारिणी थी, कहती है, हे सेनापति ! वह तेरा ओजस्वीपन तो मेरे एक कटाक्ष के देखने से नष्ट हो गया, तनिक सोच तो सही। जो

मनुष्य हस्ति के दन्त को उखाड़ने, सिंह को मारने, सर्पों को हाथों से मार देने में समर्थ है, वही परन्तु इन्द्रियों के वश करने में असमर्थ होता है। तू कहता कि तूने लाखों को जीता है और मैं कहती हूँ कि मैंने तुझको जीता है। कप्तान की बुद्धि ठिकाने आगई। मनुष्य वह है, जो मनुष्य के काम करे।

एक फ़ारसी का कवि कहता है—

"एक तरफ़ से देखूँ तो करोड़ों आदमी नज़र आते हैं लेकिन दूसरी तरफ़ से देखूँ तो कोई भी नहीं।

मनुष्य वह है जिसने अपने आत्मा का बल बढ़ाया है, जैसे महानुभाव महर्षि दयानन्द थे, बल देखो तो पूरा, विद्वान् तो पूर्ण, संसार को सुधारने की भावना को देखो तो पूर्ण, जितेन्द्रियता में पूर्ण।

प्रमाद न करो, दुःख उठाओगे। समय अच्छा है, साधन अच्छे हैं, अपने आप को जितेन्द्रिय बनाओ। इन्द्रिओं को वश में कर लेने से मनुष्य की प्रतिष्ठा बढ़ जाती है। मनुजी ने कहा है कि जितेन्द्रिय बनने का विचार करो, इन्द्रियों को वश में करो। विषयों के जाल में न फंसो। यदि अपने जीवन को यज्ञ-रूप बनाना चाहते हैं, तो इन्द्रियों के प्रत्येक मार्ग को ठीक करके उन्हें वश में ले आओ। जितना मनुष्य वीर्यवान् होगा उतना ही सुन्दर होगा और रोगरहित होगा, संतान भी बलवान् होगी। इसलिये अपने आप को वश में रखो। यदि नहीं रखते तो कवि का वाक्य सुनो जो कहता है—"पहले ही पापों का फल पा रहे हो; फिर भी मूर्खता के वश में होकर उन्हीं पापों के गम्भीर जल में जाते हो और अपनी गर्दन पर मन भरकी शिला बांध रहे हो"। उपदेश केवल सुनने के लिये नहीं, उपदेश जीवन में लाने के लिये होते हैं। "हे परमात्मा! हमें बलदो, और हमारे विचार शुद्ध हों"!

ईश्वर भक्ति

भक्ति की आवश्यकता

सत्सङ्ग की महिमा सारे शास्त्रों ने गाई है, इसलिये जीवात्मा का जो भी क्षण सत्सङ्ग में व्यतीत हो जावे वही क्षण शुभ है। यद्यपि आज इस बात को जानते हुए भी हमने जीवनों को अधिकतर सांसारिक कामों में लगाना ही धर्म समझा हुआ है, परन्तु प्राचीन समय में एक दो घंटे के लिये प्रत्येक पुरुष ईश्वर गुण वर्णन और विचार में समय व्यतीत करता था। इसी प्रकार हवन की महिमा है। प्रातःकाल का हवन अपनी सुगंधि से धीमे २ वायु को पवित्र करता है, संध्या काल में फिर हवन किया जाता है। इस तरह प्रातः के सत्सङ्ग से अभ्यासी पुरुष संध्या तक रंगे रहते थे फिर संध्या को सत्सङ्ग का और रंग चढ़ाते थे। परमेश्वर का चिन्तन मनुष्य को सुख की ओर ले जाता है। वेदों के मन्त्र देखें, एक २ मन्त्र जीवन को पवित्र करता है। जो ऐश्वर्य्य हम चाहते हैं उनका केन्द्र भी वेद-मन्त्र हैं।

परमात्मा बतलाते हैं भूत, भविष्यत और वर्तमान इन तीनों कालों की गति परमेश्वर में नहीं है। उसमें केवल वर्तमान काल है। परन्तु केवल वर्तमान क्यों ? बताइये आपके साथ किस काल का सम्बन्ध है, भूत का अथवा भविष्यत् का ? जो भूत हो गया वह गया और जो भविष्यत् है वह आकर वर्तमान बन जायगा, इसलिये वर्तमान काल किसी दशा में भी अलग नहीं होता। सदा

ही 'वर्तमान काल' का सम्बन्ध आपके साथ है, परन्तु प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार परमेश्वर की सहायता आपके साथ है परन्तु प्रतीत नहीं होती। प्रश्न यह है कि वर्तमान को किस प्रकार जाने ? क्या चार घंटे दो घंटे अथवा एक घंटे को वर्तमान कहते हैं। नहीं! यह 'वर्तमान् काल' कुछ और है। भूत और भविष्यत दोनों को अलग करने वाली शक्ति वर्तमान काल कहलाती है। ऐ संसार के मनुष्यो! जैसे वर्तमान काल की प्रतीति नहीं होती परन्तु वह है, इसी प्रकार परमेश्वर की सत्ता प्रतीत नहीं होती परन्तु तुम्हारे साथ बराबर विद्यमान् है। दूसरी ओर बतलाया है कि परमेश्वर सुख-स्वरूप है। हम सुख चाहते हैं। सुख का केन्द्र कहां है ? वह केन्द्र वही परमात्मा है। मुझे केवल उससे ही मांगना चाहिये क्योंकि उसी में कुछ देने की शक्ति है। जिसके पास कुछ नहीं वह मुझे क्या दे सकेगा ? यदि मैं भूखा हूँ तो मुझे रोटी वाला ही रोटी दे सकता है। इसी प्रकार हम किसी और से सुख नहीं पा सकते, केवल उस सुख के केन्द्र से।

हमारी गति इस समय उल्टी हो रही है। परमेश्वर से हम नहीं डरते, मनुष्यों से डरते हैं। जो लोग परमेश्वर से प्रेम नहीं करते, वह संसार में पग २ पर डगमगाते हैं, क्लेश सहते और नाना प्रकार के दुःखों में फंसते हैं। दो आंख वालों से हम भय करते हैं परन्तु वह परमात्मा जिसकी सब ओर आंखें हैं जिससे छिप कर कोई काम नहीं किया जा सकता, हम नहीं डरते।

क्या आप कोई ऐसा काम कर सकेंगे जिसमें वर्तमान काल न हो ? जिस प्रकार वर्तमान काल साथ नहीं छोड़ता इसी प्रकार परमात्मा हर समय तुम्हारे साथ लगा हुआ है। देखो, वह तुमको देख रहा है अतः कोई बुरा काम न करना। स्मरण रक्खो वह

असंख्य आंखों वाला तुम्हें देख रहा है। उससे डरो और किसी से मत डरो। परमात्मा का भय लोगों को बुरे कामों से हटा देता है। जब बुरे काम हट जाते हैं तो फिर बुद्धि निर्मल हो जाती है।

जातकर्म-संस्कार में सबसे पूर्व बालक के कान में 'ओं' शब्द कहा जाता है। लोग कहेंगे ऐसा क्यों करते हो? बालक भला उसे क्या समझ सकता है। परन्तु मृत्यु समय भी इसी 'ओं' को स्मरण कराया है और कहा जाता है कि हे संकलित पुरुष! शरीर से वियोग का समय है अब उसी 'ओं' का स्मरण कर जिसका पहले किया था। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य जब तक जीवित रहे तब तक 'ओं' का स्मरण करता रहे। यह स्मरण अभ्यास से ही होता है। यदि आप अभ्यास करते रहें तो मृत्यु का मुकाबिला सहज हो जाता है, जैसे स्वामी दयानन्द जी ने शान्ति के शब्दों को उच्चारण करके प्राणों का त्याग किया था। यदि उस प्रभु की महिमा को न जानोगे, यदि उसके नाम का जाप न करोगे तो स्मरण रक्खो तुम बुद्धिमान नहीं कहला सकते।

महान् प्रभु की शरण लो!

शरीर के साथ जीवात्मा का जो सन्बन्ध है इसे अत्यन्त उपकारक समझो और प्रभु का भजन करो,यही तुम्हारे संग चलेगा। परन्तु जो लोग प्रभु स्मरण नहीं करते, वे कृतघ्न हैं। कृतघ्नता संसार के सब पापों से बढ़ कर है। यदि एक पुरुष हमको १०) रु० की नौकरी देता है तो उसका दोनों हाथ जोड़ धन्यवाद करते हैं प्रत्युत् जिसने हमारे शरीर के अमूल्य अंगों को दिया है उसका यदि आधा घण्टा स्मरण न करें तो हम कितने कृतघ्न होंगे? स्मरण रक्खो कि कृतघ्न पुरुषों को संसार में कभी सुख नहीं हुआ।

इसलिये प्रातः और सायंकाल में अपने आत्मा को उससे जोड़ो; इससे तुम्हारे सांसारिक व्यवहार भी नहीं बिगड़ सकते। शास्त्र कहता है कि प्रातः ४ बजे उठ कर उसका स्मरण करो। किसका स्मरण? उसका जिसके भीतर चारों वेद आ जाते हैं, जिसने सारे जगत् को रचा है। श्रुति कहती हैं कि जो लोग वेदों को पढ़ कर प्रभु को नहीं पहचानते, उनका वेद पढ़ने का लाभ ही क्या है?

आप अपने आपको एक व्यायामशाला के ऊपर खड़ा देखो। दो मल्ल (पहलवान) उठते हैं एक दूसरे को गिराना चाहता है अन्त को एक गिरा और दूसरे ने गिराया। गिराने वाले का मुख प्रसन्न है। विजय ने उसके मुखड़े को कुरूप होते हुए भी सुन्दर बना दिया है। गिरने वाले के मुख का रंग उड़ गया है, यह क्यों? आर्य्य पुरुषो, एक का सम्बन्ध सफलता के साथ है दूसरे का असफलता के साथ। बतलाओ तुम कैसा बनना चाहते हो? सफलता को प्राप्त होना चाहते हो अथवा असफलता को? आप इस संसार रूपी अखाड़े में उतरे हुए हैं। अतः आओ सिद्धि के मार्ग पर चलें! यदि हम आलस्य और शिथिलता में पड़े रहे, तो सिद्धि कैसे मिलेगी? आज चाहे सांसारिक आनन्द और विषय-वासनाओं में पड़कर मृत्यु का भय मिटा दो परन्तु मृत्यु पीछा नहीं छोड़ेगी। एक २ क्षण, घड़ी २, दिन-रात व्यतीत होने से हम मृत्यु के निकट होते जाते हैं परन्तु हमने उसे कभी विचारा ही नहीं।

शिकारी कुत्ते जब ख़रगोश के पीछे लगते हैं तो ख़रगोश थक कर झाड़ी में मुँह दे लेता है और समझता है कि कुत्ते चले

गये। परन्तु कुत्ते नहीं हटते, वे आ दबोचते हैं। इसी प्रकार यदि मृत्यु का चिन्तन नहीं तो मृत्यु हट नहीं जाती, वह आएगी और अवश्य आएगी। एक मनुष्य लाठी लिये मेरे पीछे भागा आता है, मैं बचने का यत्न करता हूँ परन्तु कहाँ जाऊँ? वह मुझ से बढ़ कर पराक्रमी है। मुझे ऐसे सहायक की आवश्यकता है जो मुझ से और मेरे मारने वाले से अधिक बलवान् हो, तब मैं बच सकता हूँ। हमारे पीछे मृत्यु लगी हुई है। काल से बढ़ कर कौन बली है? महारानी विक्टोरिया को कई डाक्टर एक क्षण भी अधिक जीवित न रख सके। इस रोग का कोई वैद्य नहीं। परन्तु विचारो, परमात्मा में मृत्यु की गति नहीं, वह इससे ऊपर है। जिसने उनकी शरण ली वह मृत्यु के पंजे से बच गया वह उसके भय से बाहिर निकल गया। जिसकी आज्ञा से अग्नि तपता है जिसकी आज्ञा से सूर्य्य, चन्द्र और पृथ्वी खड़ी है, मृत्यु भी उसकी आज्ञा से चलती है, उसकी शरण पकड़ो! फिर तुम्हारा कोई शत्रु न रहेगा। इसके लिये पहले अभ्यासशील बनो। उस मृत्यु से अधिक बली, शरण देने वाले प्रभु का स्मरण करो और वह तुम्हें अपनी गोद में लेकर निर्भय कर देगा।

झूठे सांसारिक प्रेम का दृष्टान्त

एक २०-२२ वर्ष का युवक साधुओं के पास जाता है। साधु उसे कहते हैं, पुत्र तुम होनहार हो, संसार का उपकार कर सकते हो, घर को छोड़ कर संसार के उपकार में लगो। लड़का कहता है, मैं पिता का एक ही पुत्र हूँ, मेरे विवाह हुए अभी दो वर्ष हुए हैं, मेरा पुत्र अभी छोटा सा है, मैं भला कैसे जा सकता हूँ? क्या यह पाप नहीं है कि इस प्रकार माता और अपने पुत्र आदि

को छोड़ दूं ? साधु कहता है, पाप उस के लिये है जो घर से व्यभिचार करने के लिये निकलता है, अथवा कोई पाप करने के लिये जाता है। पाप उसके लिये नहीं हैं जो संसार का उपकार करने के लिये निकलता है। वह लड़का फिर भी नहीं मानता और अपने माता पिता का हाल वर्णन करता है। इस पर साधु ने उस को प्राणायाम सिखलाया और कहा, हम तुमको इस सांसारिक प्रेम का यथार्थ रूप दिखलावेंगे। उसको कहा कि एक दिन तुमने किसी रोग का बहाना करना और दूसरे दिन प्राण चढ़ा कर लेट जाना। उस लड़के ने ऐसा ही किया और सांस चढ़ा कर मुर्दों की तरह लेट रहा। घर के लोग रोने पीटने लगे, हाहाकार मच गया। लोग भी सहानुभूति प्रगट करने को आये और कहने लगे, हाय शोक ! माता पिता का एक ही लड़का चल बसा। उस साधु ने भी यह समाचार सुना और लड़के के घर आकर उसके माता पिता को कहने लगे, हे गृहस्थियो ! रोना बन्द करो, ठहर जाओ मैं तुम्हारा पुत्र जीवित कर सकता हूँ। साधु ने झूठ ही कुछ पढ़ना आरम्भ कर दिया और फिर दूध मंगवा कर उसके पास रख दिया और कहा, यह लड़का तब जीवित हो सकता है यदि इसका कोई प्यारा मित्र, माता पिता, बहन भाई, स्त्री या पुत्र दूध पीले। परन्तु जो भी इस दूध को पियेगा, वह मर जावेगा।

अब बारी २ सब को दूध के लिये कहा जाता है परन्तु उसके सारे सम्बन्धी कोई न कोई बहाना करके टाल देते हैं। मित्र यह दृष्य देखकर पहिले ही खिसक गये कि कहीं हमें न दूध पीने को कहा जावे। जब यह दशा हुई। तो साधु ने ऊँचे स्वर से कहा, "हे सम्बन्धियों की झूठी प्रेम-शृंखला में बंधे हुये ! देख

और ध्यान से देख कि वे तुझको कितना प्रेम करते हैं और तू उनके लिये सारे संसार को अलग किये बैठा है। अब उठ बैठ और उनका परित्याग करके संसार का उपकार कर"। लड़का उठ बैठा और उसके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। शास्त्र कहता है, धर्म के विरोधी माता पिता को छोड़ दो।

हमारे जैसे सहस्रों कायर पापी निरर्थक हैं। एक ही बलवान् उपकारी जीव बेड़ा पार कर देगा। यदि अपने आप को बलवान् बनाना चाहते हो तो ईश्वर-भक्ति में दत्तचित्त हो जाओ।

बल धर्म में है—ईश्वर भक्त चने की रोटी खायेगा, पाप नहीं करेगा। हम दूध माखन खाकर भी दुर्बल होते जाते हैं। मनुष्यो, बल दूध माखन में नहीं प्रत्युत भक्ति और कर्त्तव्य पालन में है। जो लोग अपने धर्मपालन में सिंह की न्याईं सीधे तैरते हैं, मृत्यु यदि सन्मुख खड़ी हो तो भी वे आगे जाने से नहीं झिझकते। धर्म सहायता करता है परन्तु केवल धर्म २ पुकारने से नहीं। धर्म ने उस समय तुम्हारी सहायता करनी है जब पुत्र, धन, राज्य और महलों से आपको धर्म अधिक प्यारा होगा। धर्म से हंसी ठट्ठा न करो। मनुष्य कहलाते हुए मन में गिरावट, पग २ पर बुराई? भाइयो, छोड़ दो इन बातों को। अपने परिवार में बैठ कर प्रतिदिन धर्म का चिन्तन करो। अफ़लातून ने देखा कि एक पुरुष पागलों के पीछे जाता है। अफ़लातून ने इस पुरुष को बुला कर कहा कि आप तो विद्वान् और बुद्धिमान प्रतीत होते हैं आप अपने मस्तिष्क का इलाज कर लें आप पागलों के पीछे क्यों घूमते हैं? उसने कहा, मेरा मस्तिष्क ठीक है, मैं केवल उनकी चाल-ढाल देखता हूँ क्योंकि यह मुझे भली लगती

है। अफलातून ने पूछा, कितने दिन ऐसा करते हो गये? उसने कहा, दस दिन। अफलातून ने कहा, तुम आधे पागल हो चुके हो अब दस दिन के पीछे पूरे पागल हो जाओगे। विचारों का प्रभाव मस्तिष्क पर बड़ा गहरा पड़ता है। जो जिसका विचार अथवा चिन्तन करेगा वह वैसा ही बन जावेगा। इसलिये प्रतिदिन एक आध घण्टा प्रभु का चिन्तन किया करो, इससे आप अपने आप को और सारे संसार को सुखी कर देंगे। उस समय तुम्हारा कुछ धन अपनी क्षुधा-निवारण के लिये और शेष का धन धर्म-प्रचार के लिये होगा। तुम्हारी विद्या तुम्हें सीधे मार्ग पर ले जायगी, औरों को पथ दर्शायगी। जो ऐसा करेगा वह प्रभु का प्यारा बनेगा नहीं तो पूछा जाता है और पूछा जा रहा है—

कभी तू काम भी आया किसी दुखिया दरिद्री के?
जगत में आन कर तूने किसी से क्या भलाई की?
भलाई कर, बदी को त्याग दो, धर्मी बनो, प्यारे।
जहां तक हो सके सेवा करो सारी खुदाई की॥
भलाई कर कि वह तुमको भले कामों का फल देगा।
तेरी झोली वही आशा के फल फूलों से भर देगा॥

सुख की प्राप्ति किस प्रकार हो ?

इस अध्याय का विषय "सुख-प्राप्ति" है। सुख की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है ? प्रत्येक मनुष्य और प्राणिमात्र इसी के लिये यत्न कर रहा है। परन्तु जिस सुख की इच्छा है, मनुजी उसके विषय में इस प्रकार कहते हैं—"**सर्वम् परवशम् दुःखम्**" पराधीनता दुःख है और स्वाधीनता सुख। आजकल जिस स्वाधीनता की ओर लोगों की रुचि हो रही है, मेरा संकेत उसकी ओर नहीं। पराधीनता में किस प्रकार दुःख है, उसको मैं एक दृष्टान्त से समझाता हूँ। गायन में आप को बड़ा आनन्द आता है, आप देखें कि इसमें कितनी पराधीनता है ? सबसे पूर्व बाजे की आवश्यकता, फिर बजाने वाले की। यदि बाजा और बजाने वाला दोनों मिल गये और आपने एक घण्टा भर सुना, मन भर गया, दिल उचाट हो गया। आपने कहा, बंद करो इस झगड़े को, हमें नींद आ रही है। इसलिये मनुजी कहते हैं कि इन्द्रियों के विषय में सुख नहीं है। इन्द्रियों से प्राप्त किये सुख में पराधीनता है। प्रत्युत पूर्ण आनन्द परमेश्वर में है, जो आदि से आपके संग है और सदा रहेगा, उसी की प्राप्ति ही सच्चा सुख है और इसी सुख में स्वाधीनता है।

सुख प्राप्ति के साधन—मनुजी लिखते हैं कि कारण और कार्य में गहरा सम्बन्ध है, और जो इसकी गहराई को न समझेंगे वे कभी सफलता को प्राप्त न होंगे। जैसे एक पुरुष को दही की आवश्यकता है, परन्तु वह नहीं जानता कि दही किस प्रकार

बनता है, वह कभी आटे और पानी को मिलायेगा और कभी किसी और वस्तु को। परन्तु जो जानता है, वह तुरन्त दूध लेकर दही जमाएगा। सुख भी एक साध्य वस्तु है। इसके साधन क्या हैं? इनको जानने की आवश्यकता है। सुख के पार्सल बाहिर से नहीं आया करते। सुख तुम्हारे अन्दर भरा पड़ा है, और इस के साधन भी तुम्हारे भीतर विद्यमान् हैं। ऋषि कहते हैं, "प्रीति पूर्वम् सुखम्" जहां प्रेम है वहां सुख है। प्रीति दुकानों पर नहीं बिकती, वह भी तुम्हारे अन्दर ही है। प्रीति की प्राप्ति का साधन विश्वास है। इसी लिये शास्त्र कहते हैं "विश्वास योरु का प्रीति" जहां विश्वास है वहां प्रीति है। वह भी आप के हृदय-मंदिर में विद्यमान् है। परन्तु यह उत्पन्न कैसे होता है? शास्त्रकार कहते हैं "सत्यमूलको विश्वासः" जहां पर सत्य है, वहां पर विश्वास है। अब यह कैसे जानें कि सत्य क्या है? इसके लिये विद्या की आवश्यकता है। इसी लिये तो कहते हैं कि "विद्या बलवति भवति" विद्या बल के देने वाली है। अब इस समस्या की व्याख्या हो गई, अर्थात् विद्या ने सत्य को उत्पन्न किया, विश्वास से प्रीति हुई और प्रीति से सुख प्राप्त हो गया, यही हमारा साध्य है और इसी विषय पर मैंने आप के प्रति कुछ वर्णन करना है।

प्रीति—सबसे पूर्व हम प्रीति को लेते हैं। संसार में जितना काम हो रहा है वह सब प्रीति और प्रेम के आधार पर है। एक समय था कि मट्टी अपनी यथार्थ दशा में थी, पानी मिलाकर ईंटें बनाई गईं। अब ईंटें पृथक् २ हैं, कोई काम इनसे नहीं लिया जा सकता परन्तु जिस समय कारीगर ने इन पर गारा और चूना

जमा दिया वे पृथक् २ ईंटें मकान के रूप में हो गईं। यही प्राति का काम है। जैसे दो ईंटों के मध्य में चूने और गारे ने काम किया इसी प्रकार जिस सभा में बुद्धिमान् पुरुष अपनी बुद्धि और प्रेम रूपी गारे को काम में लाते हैं, उन सभाओं की उन्नति होती है। जिस प्रकार दर्जी सूई और धागे से वस्त्रों को जोड़ देता है इसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष अपनी बुद्धि की सूई से सभा को यथार्थ स्थान पर पहुँचा देते हैं।

अब दूसरी दशा पर विचार करें। गाने वाला राग अलापता है, यदि तबला अलग हो और हारमोनियम की स्वर ठीक न हो, तो आनन्द नहीं आता। यदि तबला और हारमोनियम का विरोध निकाल दिया जावे तो सबको आनन्द आता है। अपने शरीर को ही ले लीजिये. शरीर में वायु, पित्त और कफ़ है। इनमें से यदि कोई भी न्यूनाधिक हो तो मनुष्य रोगी हो जाता है। तीनों के मिलाप से ही स्वास्थ्य है। मेल मिलाप ही संसार को चला रहा है। वेद कहते हैं कि पिता के अनुकूल पुत्र हो, पति के अनुकूल पत्नी हो, भगिनी के साथ भगिनी की प्रीति हो, गुरु के साथ शिष्य का द्वेष न हो, भाई २ के साथ शत्रुता न करे। परन्तु हमारे यहां सब बात ही विपरीत हो रही है।

दूसरा वेद मंत्र बतलाता है "सहना ववतु सहनौ भुनक्तु।" परमात्मा उपदेश करते हैं, हे मनुष्यो, तुमको उचित है तुम मिल कर एक दूसरे की रक्षा करो, कभी परस्पर द्वेष न करो, लड़ाई झगड़ा तुम्हारे निकट न आये। भला इन वेदमंत्रों का निरादर करके कौन शक्ति है जो जीवित रह सके। अत: यदि अपने जीवन को स्थिर रखना चाहते हो तो परस्पर प्रीति बढ़ाओ।

विश्वास—विश्वास प्रीति का मूल कारण है। जिस के अन्तःकरण में विश्वास नहीं होता उसमें जागृति नहीं आ सकती। बद्रिनाथ की कठिन घाटियों पर चढ़ना सुगम नहीं, परन्तु एक वृद्ध स्त्री जिसके मन में विश्वास है, वह बड़ी फुर्ती के साथ चढ़ जाती है। विश्वास हिन्दुओं में कूट २ कर भरा हुआ है। परन्तु हिन्दुओं के विश्वास में सत्य नहीं इसलिये इसका परिणाम अच्छा नहीं निकलता। दूसरी ओर आर्यसमाज में सत्य है, परन्तु श्रद्धा और विश्वास नहीं। गुरुकुल के उत्सव में जाने वाले यात्रियों को दो मील पत्थरों पर चलना पड़ता था, परन्तु कई लोग कहते थे इस बार बड़ा कष्ट हुआ, अब न आएंगे। परन्तु दूसरी ओर बद्रीनाथ की घाटियों पर चढ़ने वालों में कितनी श्रद्धा है, सौ सौ मील पैदल चले जाते हैं परन्तु श्रद्धा में कोई भेद नहीं पड़ता। इसलिये आवश्यकता है कि या तो हिन्दुओं का विश्वास आर्यों में आजाय या आर्यों का सत्य हिन्दुओं में चला जावे, तब ही दोनों को सफलता प्राप्त हो सकती है।

सत्य—विश्वास सदा सत्यवादियों का होता है, झूठे पुरुषों का संसार में कोई विश्वास नहीं करता। एक भांड नकल किया करता था। उसके पैर में पीड़ा होने लगी, पीड़ा से वह बहुत व्याकुल हो गया, परन्तु लोगों ने समझा कि यह अब भी नकल ही कर रहा है, किसी ने विश्वास न किया। किसी मनुष्य तथा किसी सम्प्रदाय का जीवन तब ही है जब तक उसका विश्वास है। विश्वास गया और जीवन नष्ट हुआ। इसलिये विश्वास को स्थिर रखने के लिये सत्य की आवश्यकता है।

विद्या—विद्या के बिना सत्य नहीं हो सकता। पंजाब में एक कहावत है "सौ स्याने एक मत्त", विद्वानों का एक मत होता है।

अकबर ने इस सत्यता की परीक्षा के लिये बीरबल से कहा। बीरबल ने कहा कि आप सारे मन्त्रि-मंडल तथा अन्य विद्वानों को आज्ञा दें कि रात्रि के समय प्रत्येक पुरुष एक लोटा दूध का अमुक हौज़ में डाल दें। सारे विद्वान् थे सब ने यही विचारा कि जब सब दूध डालेंगे तो मेरे एक जल के लोटे से कुछ प्रतीत न होगा। इस विचार का परिणाम यह हुआ कि जब अकबर हौज़ देखने गया तो हौज़ जल से भरा था, उसमें दूध का नाम न था। उस समय बीरबल ने कहा, देखो महाराज, सारे विद्वानों का एक मत होता है। यह एक कथा थी, इसको जाने दें। क्या आप नित्यप्रति नहीं देखते कि जब एक परीक्षक श्रेणी को प्रश्न का उत्तर देने की आज्ञा देता है तो जो विद्यार्थी ठीक उत्तर देते हैं उनका उत्तर एक होता है, परन्तु जो अशुद्ध उत्तर देते हैं उनमें से प्रत्येक का उत्तर भिन्न २ होता है। संसार में जितनी भूल बढ़ेगी उतने ही मत बढ़ेंगे।

वेदों में सत्यता है। उपनिषदों से पूर्व जब वेदों का काल था, सैंकड़ों ऋषि विद्यमान् थे। यदि १०-१० ऋषि भी एक-एक मत निकालते तो कई मत प्रचलित हो जाते परन्तु हम देखते हैं कि उस समय एक वेदोक्त मत का प्रचार था। जूँही वैदिक धर्म शिथिल हुआ, हज़ारों मत-मतान्तर हो गये।

सूर्य रूपी स्वाभाविक लैंप के विद्यमान् होने से किसी और लैंप की आवश्यकता नहीं रहती परन्तु ज्यों ही सूर्य अस्त हुआ

लोगों ने गैस लम्प जलाया। क्यों? केवल इसलिये कि परमात्मा का सूर्य रूपी लैंप विद्यमान नहीं। अब इस रात्रि के समय यदि आप किसी को कहें कि अपना दिया बुझा दे तो वह लड़ाई को उद्यत होगा, परन्तु ज्यों ही सूर्य उदय होगा सब लोग अपने २ लैम्पों को बुझा देंगे, उस समय किसी को कहने की आवश्यकता न रहेगी। इसी प्रकार आप लोगों को ईसाईयों और यवनों से लड़ने झगड़ने की आवश्यकता नहीं। वैदिक धर्म के नियमों को उच्च कर दो, अपने धर्म को सारे संसार में फैला दो, सारे मत मतान्तर स्वयम् दूर हो जावेंगे। जिस प्रकार सूर्य के सन्मुख छोटे २ लैम्प कोई स्थान नहीं रखते, इसी प्रकार वैदिक धर्म रूपी सूर्य के सामने इन मतों को कोई स्थिति न रहेगी।

ऊष्ण ऋतु में जब कि स्वाभाविक वायु की न्यूनता होती है, लोग पंखे हिलाते हैं। परन्तु शीत ऋतु में जबकि स्वाभाविक वायु अधिक होती है कोई मूर्ख से मूर्ख भी पंखे की वायु सेवन करने को उद्यत नहीं होता। इसलिये जिस समय वैदिकधर्म-रूपी वायु का ज़ोर होगा कोई भी इन कृत्रिम पंखों को न चाहेगा।

उपदेश का फल क्यों नहीं होता?

लोग कहते हैं कि हम तो उपदेश सुनते २ थक गये हैं। निःसन्देह आपका थकना आवश्यक है। जिस तरह एक एन्ट्रेंस का विद्यार्थी बारम्बार अनुत्तीर्ण होने पर अपने अध्यापक को कहता है कि मैं तो यह कोर्स रटते २ थक गया, परन्तु अध्यापक उसे परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं करता। ठीक इसी प्रकार हम उस विद्यार्थी की न्याईं अनुत्तीर्ण हो रहे हैं और कहते हैं कि हम थक गये। अब ग्राम निवासियों में प्रचार करके उनको उपदेश सुनाओ।

भला कहो तो सही कि जिस उपदेश से तुम थक गये हो वे न थक जायेंगे ? जब यह उपदेश तुमको कोई लाभ नहीं पहुँचा सका तो उससे उनको क्या लाभ होगा ? जब मैं नवीन वेदान्ती था तो मेरे गुरु स्वामी शिवप्रसाद प्रतिदिन यही रटते थे कि 'रज्जु से (रस्सी) सर्प का भ्रम होता है'। परन्तु लोग दूर २ से आकर उनके इसी उपदेश को श्रवण करते थे। यहां तो यह दशा है कि सात दिन पीछे समाज का अधिवेशन होता है परन्तु हम लोगों को उसमें भी सम्मिलित होने का अवकाश नहीं मिलता। हम में धर्म्म के लिये श्रद्धा का लेशमात्र नहीं है। जब गौ के आगे घास डाला जाता है तो पहिले जल्दी २ उसे खा जाती है उसके पीछे धीरे २ जुगाली करती है। यही जुगाली उसके पालन-पोषण और उसके दूध का कारण होती है। इसी प्रकार उपदेशों को सुन लेना घास को जल्दी से खा लेना है परन्तु इसका नित्यप्रति चर्चा करना और उसको मनन करना ही जुगाली करना है। उपदेशों से मन इसलिये उचाट हो जाता है कि हम उनका मनन नहीं करते। सत्य की सदा जय है और यही सीधा मार्ग है परन्तु इस पर अधिकार जमाना बड़ा कठिन है। विद्या के बिना सत्य पर अधिकार नहीं जम सकता। इसलिये ब्राह्मणों ने विद्या को ग्रहण किया। वे धन की ओर नहीं झुके। उन्होंने राज्य नहीं लिया। इसलिये परमात्मा ने पहिले चार ब्राह्मणों को उत्पन्न किया। ब्राह्मण होंगे तो क्षत्रिय, वैश्य वह स्वयं उत्पन्न कर लेंगे, परन्तु क्षत्रिय, ब्राह्मण उत्पन्न नहीं कर सकते। एक कथा है कि एक बार सिकन्दर और अरस्तु सफ़र में निकले। मार्ग में एक समुद्र पड़ा, जो बहुत वेग में था। अरस्तु ने सिकन्दर को कहा कि पहिले आप नैय्या में बैठ कर पार हो जायें फिर मैं आ जाऊँगा। परन्तु इस

बात को सिकन्दर न माना और पहिले अरस्तु को भेज दिया। जब दोनों एकत्र हुए तो अरस्तु ने कारण पूछा। सिकन्दर ने उत्तर दिया कि अरस्तु सिकन्दर उत्पन्न कर सकता है, परन्तु सिकन्दर अरस्तु को नहीं उत्पन्न कर सकता।

सदाचार—विद्या सदाचार से प्राप्त होती है। जिस विद्या के साथ सदाचार नहीं, वह विद्या अविद्या में परिवर्तित हो जाती है। जिस प्रकार दूध में खटाई पड़ जाने से दूध फट कर अपनी यथार्थ दशा में नहीं रहता उसी प्रकार जिस विद्या के साथ सदाचार नहीं वह विद्या अपने स्वरूप को छोड़ देती है। इसीलिये तो मनु ने विद्या के साथ तप को आवश्यक ठहराया है। दियासलाई से जहां हमें प्रकाश मिलता है वहां चोर भी अपने काम में इससे सहायता लेते हैं, अब इसमें प्रकाश अथवा दियासलाई का दोष नहीं। विद्या के साथ शारीरिक बल की बड़ी आवश्यकता है। परन्तु हमारी युवक-मण्डली के शारीरिक बल की यह दशा है कि यदि वायु सेवन की जावे तो भी बाईसिकल पर। आजकल धनवानों का सुख और व्यवहार (फैशन) निर्धनों के लिये बड़ा दुःखदायी हो रहा है। एक धनी चाहे वह निरक्षर ही क्यों न हो, कोट बूट पतलून पहन कर तत्काल स्टेशन पर चला जाता है और उसको कोई नहीं रोकता। परन्तु मेरे जैसा रङ्क चाहे उससे कितना विद्वान् हो अन्दर नहीं जा सकता। एक धनी के पड़ोस में निर्धन के बच्चे भूख से तड़प रहे हों परन्तु उसको दया नहीं आती, वह बड़े आनन्द से घर में लेटा पड़ा है। प्रयाग के कुम्भ में बड़े २ साधुओं को जिनके पास पहिले ही कम्बल और लोईयां होती हैं,

धनी लोग वस्त्र देते हैं। परन्तु वे निर्धन साधु जो शीत से तड़पते हैं उनको कोई नहीं पूछता।

भर्तृहरिजी कहते हैं कि सत्यगुणी पुरुषों के लिये मोक्ष का द्वार खुल जाता है। एक ही ज्ञान की बूँद उन मनुष्यों के लिये सुखमय बन जाती है जिन्होंने इन्द्रियों को जीत लिया है, परन्तु वही बूँद उनके लिये दुःखमय होती है जिन्होंने इन्द्रियों को नहीं जीता। मैंने आप को बतलाया है कि विद्या तब ही सुखकारिणी हो सकती है जब वह यथाविधि नियमानुसार और सदाचारपूर्वक प्राप्त की जावे। संसार में मूर्ख इतना अत्याचार नहीं फैला सकते जितना कि सदाचार-रहित विद्वान। यदि एक मूर्ख मद्यपान करे तो लोग कहेंगे यह मूर्ख है उसको तो समझ ही नहीं। यदि कोई पढ़ा लिखा मद्यपान करता हुआ देखा जावे तो लोग उससे इसका कारण पूछेंगे? वह अपनी निर्बलता को छिपाने के लिये मद्य के प्रति युक्तियां प्रस्तुत करेगा। सर्वसाधारण उसके फंदे में फंस कर मद्य का सेवन आरम्भ कर देंगे, संसार में अत्याचार फैलेगा। इसके प्रमाण में आप "महिधर" को देख लें जिसने अपने भाष्य के द्वारा भारत में मद्य मांस का प्रचार किया। परमात्मा करे विद्वान् आचारहीन न हों, क्योंकि संसार में अनुकरण विद्वानों का होता है, मूर्खों का नहीं।

स्वामी दयानन्द से पूर्व काशी में शतशः बड़े २ पण्डित विद्यमान् थे परन्तु किसी को देश की हीन अवस्था पर ध्यान न आया। परन्तु ऋषि दयानन्द देश की दुर्दशा को देख कर तड़प उठा। विद्या को संस्कृत के विद्वानों ने स्त्रीलिङ्ग माना है, इसका पति सदाचार है। विद्या और सदाचार के समागम से जो सन्तान उत्पन्न होती है उसका नाम ज्ञान और पुरुषार्थ है। कवि कहता है—

पुरुषार्थ नहीं जिस पुरुष में वह पुरुष वृथा आकार है।
पुरुषार्थ विना उस पुरुष के जीवन पे शत धिक्कार है॥

मैंने आपको बतलाया कि सुख-प्राप्ति के लिये सब से पूर्व विद्या की ज़रूरत है। विद्या के साथ सदाचार आवश्यक है। फिर विश्वास, विश्वास के साथ प्रीति, और परस्पर प्रीति का परिणाम सुख है।

विवेक और वैराग्य

संसार की अवस्था देखने में कुछ और है, परन्तु उसका वास्तविक स्वरूप कुछ और ही है। नैयायिकों का सिद्धान्त है कि संसार एक चक्र की तरह घूमता है। इस चक्र के सिरे का कुछ पता नहीं लगता, दो मिनट में जो सिरा ऊपर होता है वह नीचे हो जाता है। इसी बात को फ़ारसी में "हर क़माले राज़वाले" कहा गया है। परन्तु साधारण लोग इसको नहीं समझते। कभी भारत का उदय काल था। पर जिसका उदय हुआ उसका अस्त होता है। अब कोई पूछे कि अस्त क्यों हुआ, तो इसका उत्तर क्या दिया जा सकता है? किसी का पिता मर गया था, लोग शोक प्रगट करने आए और कारण पूछने लगे कि क्यों मरा, कैसे मरा? पुरुष विचारशील था, उत्तर दिया, जो उत्पन्न हुआ उसने एक दिन मरना था, सो मर गया। परन्तु ऐसे उत्तर से लोग अप्रसन्न हो जाते हैं। यदि वही कह दे कि दो दिन ज्वर आया था मर गया तो उनको संतोष आ जाता है और फिर आगे प्रश्न नहीं होता। संसार तो कारण पूछता है। इसी बात को महात्मा भर्तृहरिजी कहते हैं कि जिनका विवेक भ्रष्ट हो जाता है वे स्वयं भ्रष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य व जाति विवेकयुक्त होती है वह संसार के सुखों से लेकर परमेश्वर तक को प्राप्त करेगी। परन्तु जिसका विवेक भ्रष्ट हो जायगा उसको परमात्मा की प्राप्ति तो क्या संसार के सुख भी नहीं मिलते।

विवेक क्या है ?

आप पूछेंगे विवेक क्या है ? आपने सिपाहियों को चाँद-मारी करते कई बार देखा होगा। चांदमारी में कई सिपाही निशाना लगाने के लिये लक्ष्य बांधते हैं, परन्तु निशाना उसी का लगता है जिसका लक्ष्य ठीक नेत्रों के सामने हो। परन्तु जिसका लक्ष्य भ्रष्ट हो जाय वह चाहे कितना ही यत्न क्यों न करे उसका निशाना नहीं लगता। लक्ष्य का भ्रष्ट होना व न होना परिणाम से जान पड़ता है। इसी का नाम विवेक है। एक कवि ने विवेक का यह लक्षण किया है कि धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष—यह चार पदार्थ जिसके लक्ष्य में रहते है वह विवेकी पुरुष है, परन्तु जिस पुरुष के जीवन में न धर्म्म, न अर्थ, न काम और न मोक्ष की भावना है, उस पुरुष का जीवन उस बकरी [अजा] की न्याईं है जिसके दो स्तन तो हैं परन्तु दूध नहीं; ऐसे पुरुष विवेक-भ्रष्ट होते हैं।

विवेक का महत्त्व

"अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" यह वेदान्त का एक सूत्र है, अर्थात् इसके अनन्तर ब्रह्म के जानने की इच्छा करनी चाहिये। किसके अनन्तर ? इन चार सिद्धान्तों के अनन्तर जिनका मैंने पहले वर्णन किया है। इन चार सिद्धान्तों में पहला साधन विवेक है। अपने हित और अहित का विचार ही विवेक है।

अब मैं आप से पूछता कि हम में विवेक कहां है ? विवेक के पश्चात् वैराग्य होता है। जिसमें विवेक नहीं उसमें वैराग्य भी नहीं हो सकता। अंग्रेजी पढ़ें लिखों में विवेक तो थोड़ा बहुत पाया जाता है परन्तु वैराग्य उनमें नाममात्र का भी नहीं।

वे कहते हैं कि वैराग्य ने देश का सत्यानाश कर दिया है, यह बात किसी अंश में तो ठीक है, परन्तु सर्व अंशों में सत्य नहीं। आप लोग जिन साधुओं को वैरागी समझ रहे हैं, वे वैरागी नही हैं, वे मूढ़ तो देश के लिये भार हैं।

वैराग्य क्या है ?

एक विद्यार्थी जब विद्या समाप्त कर लेता है तब उसको विवेक होता है। और शास्त्रों में लिखा भी है कि ब्रह्मचर्य्य के अनन्तर गृहस्थ, फिर वानप्रस्थ और तत्पश्चात् सन्यास यह एक लाइन है। परन्तु दूसरी लाइन हमारे शास्त्रों ने यह बतलाई है कि जिस समय वैराग्य हो उसी समय सन्यास ले लेना चाहिये, परन्तु यह भी ब्रह्मचर्य्य और विद्या-समाप्ति के पश्चात्, क्योंकि विद्या समाप्ति के पश्चात् मनुष्य को विवेक हो जाता है और वह अपने शुभाशुभ को जानने लगता है। विवेक के पश्चात् यदि अपना हित गृहस्थ में समझे, गृहस्थी बन जाए, और वैराग्य उत्पन्न होजाए तो सन्यास धारण कर ले, जैसे स्वामी शंकराचार्य्य ने किया।

स्वामी शङ्कराचार्य्य का सन्यास

विद्या समाप्त करने के पश्चात् स्वामी शंकराचार्य्य को देशोद्धार की चिन्ता हुई, और गृहस्थ से वैराग्य हो गया। वे अपनी माता के पास आए और कहा, माता मुझे आज्ञा दे मैं संसार का उद्धार करूं। माता प्रेम के वश में हुई आज्ञा नहीं देती। पुत्र वेद का विद्वान है, माता की आज्ञा को भङ्ग करना भी नहीं चाहता। एक ओर माता की आज्ञा, दूसरी ओर संसार को उल्टे मार्ग से बचाने की कामना; चित्त व्याकुल हो गया, दिन रात

इसी चिन्ता में लीन रहता है। एक दिन अपने साथियों के साथ तालाब पर नहाने गए। साथी तालाब में खेल कूद रहे हैं परन्तु उनको वही चिन्ता घेरे हुए है। सोचते सोचते उन्हें ढंग सूझ गया और उन्होंने अपने साथियों से कह दिया कि मेरा पांओं संसार ने पकड़ लिया है। उनका यह कहना था कि सब साथी तालाब से निकल कर भाग गए और उन्होंने शंकराचार्य्य की माता को जाकर कहा। वह रोती हुई तालाब पर आई, शंकराचार्य्य ने कहा, माता घबरा मत, मुझे संसार कहता है, यदि तेरी माता तुझे घर से निकलने की आज्ञा दे देवे तो छोड़ देता हूँ अन्यथा नहीं। माता ने सोचा यदि आज्ञा नहीं देती तो संसार पुत्र को निगल जायगा, यदि आज्ञा दे दूं तो कभी न कभी देख ही लिया करूंगी। उसने कहा, पुत्र मैं तुम्हें आज्ञा देती हूँ। वे तालाब से बाहर निकल आए और उसी दिन से संसार के उद्धार में लग गए।

मैंने आप को बतलाया कि वैराग्य व संन्यास ब्रह्मचर्य के पश्चात्, और वानप्रस्थ दोनों अवस्थाओं में हो सकता है। यदि ब्रह्मचारी समझे कि मैं अपनी इन्द्रियों पर विजय नहीं पा सकता तो उसका उपाय गृहस्थ है, और यदि वह सम्पूर्ण सांसारिक कामनाओं को मार कर संसार का उपकार कर सकता है तो संन्यास ले लेवे।

अब मैं यह बतलाना चाहता हूँ कि क्या सचमुच वैराग्य सत्यानाश करने वाली वस्तु है। गृहस्थ में प्रवेश करके मनुष्य के लिये उपदेश है कि वह अपनी पत्नी से तो राग करे परन्तु शेष सब स्त्रियों को माता और भगिनी जानकर उनसे वैराग्य करे। क्या

यह वैराग्य देश का सत्यानाश करने वाली वस्तु है। दुःख तो यह है कि जहां हम अपनी स्त्री में राग करते हैं वहां हम दूसरी स्त्रियों से भी राग करने लग जाते हैं। वैराग्य संसार की व्यवस्था को ठीक रखने का साधन है; जैसा कि ऋषि दयानन्द ने वैराग्यवान होकर किया।

एक ब्रह्मचारी गुरुकुल से पढ़कर आ रहा था, उसकी जेब में पंद्रह स्वर्ण मुद्रिका थीं। ठग ने रास्ता रोक कर पूछा, बतला तेरे पास क्या है? ब्रह्मचारी ने पंद्रह मुद्रिका निकाल कर दिखला दीं। ठग ने पूछा, तुमने मुझे सच सच क्यों बतलाया है? ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया, मुझे गुरुकुल में यही शिक्षा मिली है। इस बात का ठग के हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा और बोला, सज्जन, मुझे भी कुछ उपदेश कर। ब्रह्मचारी ने कहा, ठगी छोड़ दो, और उसने उस निन्दित कर्म को छोड़ दिया। यही दशा बाल्मीक ऋषि की हुई थी।

परन्तु हम आप प्रतिदिन उपदेश सुनते हैं, कुछ फल नहीं होता, क्योंकि हममें न विवेक है न वैराग्य। महाराज भर्तृहरि एक प्रश्न करते हैं और आप ही उसका उत्तर देते हैं कि क्या कारण है कि एक मनुष्य उपदेश सुन कर सुधर जाता है और दूसरा बिगड़ जाता है। वे बतलाते हैं कि जिसके अन्तःकरण में सतोगुण की वृत्ति है उसको ज्ञान का एक विन्दु तार देता है और जिसके अन्तःकरण में तमोगुण का राज्य है उस पर उपदेश का एक विन्दु उसके अन्धकार को बढ़ा देता है।

ईश्वर भजन के प्यारे एकान्त को बहुत पसन्द करते हैं परन्तु चोर और यार भी प्रत्येक समय में एकान्त की खोज में

रहते हैं। भक्त तो ईश्वरभक्ति के लिये एकान्त पसन्द करते हैं परन्तु चोर और यार चोरी और यारी के लिये। अब इसमें एकान्त का क्या दोष ?

इसी लिये कहा है कि पहले अन्तःकरण को शुद्ध करो, फिर प्रत्येक वस्तु अपनी वास्तविक अवस्था में दिखाई देगी। संध्या, स्वाध्याय, सत्सङ्ग, सब काम विवेक के हैं। महात्माबुद्ध, शंकर स्वामी, दयानन्द जितने भी महापुरुष हुए हैं, वे सब विवेकी थे। जितना जितना किसी में अधिक विवेक होगा उतना ही वह अधिक महान् होगा।

बुद्ध के जीवन की घटना

महात्मा बुद्ध जब घर से निकलने वाले थे तो उनके पिता ने समझाया, कि पुत्र ! मैं वृद्ध हो गया हूँ, मेरी सेवा तेरा धर्म है। बुद्ध ने उत्तर दिया, मैं केवल एक वृद्ध की सेवा नहीं चाहता, परंच संसार भर के बूढ़ों की सेवा का व्रत धारण करना चाहता हूँ। फिर उन्हें कहा गया कि तुम्हारे घर पुत्र उत्पन्न हुआ है इसलिये अब घर छोड़ना उचित नहीं। उत्तर दिया, इस बालक ने मुझे उपदेश दिया है, कि घर से शीघ्र निकल क्योंकि यह कन्या और पुत्र बन्धन की कड़ियां हैं, जितनी अधिक होंगी उतनी ही कस कर जकड़ लेंगी। मैंने आपको बतलाया कि अन्तःकरण की निर्बलता से जीवात्मा निर्बल हो जाता है, और मलीनता से मलीन हो जाता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आत्मा को मलीन करने वाली वृत्तियां हैं। इसके लिये एक उदाहरण देता हूँ। आपने एक बग़ीचे में आम्र, निम्बु और मिर्च के पौदे लगाये है, आकाश से उन पर जल बरसता है, एक के लिये वही जल मीठा रस

बनाता है, दूसरे के लिये अम्ल और तीसरे के लिये कड़वा रस बनाता है। अब इसमें जल का क्या दोष? जिस गुण वाले पौदे पर पड़ा उस पर वैसा प्रभाव डाला।

एक उदाहरण

एक स्थान पर एक पण्डित महाभारत की कथा कर रहे थे। कथा की समाप्ति पर किसी ने उससे कुछ शिक्षा ग्रहण की और किसी ने कुछ। एक बनिया भी उनमें कथा सुन रहा है, पण्डितजी ने उससे पूछा कि क्यों भाई, तुमने क्या शिक्षा ग्रहण की? उसने उत्तर दिया कि अपने भाइयों का माल जी खोल कर उड़ाएँ और मर जाएँ, परन्तु लड़े बिना उनका धन वापस न करें। यह है अन्तः करण की मलीनता।

अन्तःकरण की शुद्धि अत्यावश्यक है

यदि प्रत्येक मनुष्य अपने अन्तःकरण की शुद्धि में लग जाय, तो सारा संसार थोड़े दिनों में सुधर जाय। परन्तु हम लोग करते क्या हैं? बूट, कपड़े और बाईसिकल की सफ़ाई के लिये तो दो-दो घण्टे नित्य प्रति लगा देते हैं, किन्तु अपने अन्तःकरण की शुद्धि के लिये पंद्रह मिनट भी प्रतिदिन नहीं देते। बताओ इस भारी समाज में कितने मनुष्य हैं जो सच्चे हृदय से दस मिनट रोज़ भी अपने मन को शुद्ध करने में देते हैं? यदि तुम लोग यत्न ही नहीं करते, तो फिर यह कहना कि हमारे मन शुद्ध नहीं होते, भक्ति और सन्ध्या में जी नहीं लगता, कहां तक ठीक है। बात तो तब है कि यदि आप मन से नित्यप्रति समय दें और फिर अन्तः करण शुद्ध न हो।

घोर अंधेरे की रात्रि में आप चल रहे थे, मार्ग दिखाई न

देता था, पग पग पर ठोकरें खाते थे, उस समय परमात्मा की कृपा हुई, और बिजली ज़ोर से चमकी, और मार्ग दिखला कर चली गई। अब यदि आप यह चाहें कि बिजली आपके पास ठहरी रहे तो यह हो नहीं सकता। यही दशा धर्मिक जगत् की ऋषि दयानन्द के आने से पहले थी। सारा संसार अंधकार में था, परमात्मा की कृपा हुई, ऋषि दयानन्द जगत् में आए और मार्ग दिखला कर चले गये। अब आप लोग चाहते हैं कि वे हमारे पास बैठे रहते अथवा हमें फिर आकर जगाएँ, यह नहीं हो सकता। यदि आपने उस समय प्रकाश नहीं लिया तो अब आप से क्या आशा हो सकती है? इसलिये समय है कि अब भी सम्भल जाओ और समझ कर संसार का मुकाबिला करो। मैं शरीर की शुद्धि का विरोधी नहीं, परन्तु शरीर के साथ यदि अन्तःकरण की शुद्धि नहीं तो शरीर की शुद्धि किसी काम की नहीं। अन्तःकरण की शुद्धि सच्चा विवेक है जिससे मनुष्य अपनी हानि और लाभ को समझ सकता है।

ब्रह्मचर्य

सज्जन पुरुषो ! वेद में एक मंत्र आया है, जिसमें बतलाया गया है कि विद्वान् कौन है, और रोगी कौन है ? पहला प्रश्न इसमें यह किया गया है कि विद्वान् कौन है ? उत्तर दिया गया है—अर्थवत्, जिसमें अर्थ विद्यमान् है, जो अर्थहीन एक भी बात नहीं कहता। दूसरा प्रश्न यह है कि रोगी कौन है ? उत्तर है, अधातु अर्थात् जिसमें धातु (वीर्य) नहीं। धातु का अर्थ विश्वास भी है, जिसका संसार में विश्वास न रहे, वह भी रोगी है। विद्वान् के चिह्न एक और श्लोक में भी वर्णन किये हैं। इसमें बतलाया गया है कि जिसका आचार तथा विचार, उक्ति और कृति एवं मन्तव्य और कर्त्तव्य एक हों, वह विद्वान् है। इस कसौटी के अनुसार आप देख लें कि आप में कितने विद्वान् हैं ? हम लोग कहते कुछ और करते कुछ हैं परन्तु कर्त्तव्य से कुछ और दिखलाते हैं। मन के विचार कुछ और हैं परन्तु प्रकट कुछ और ही करते हैं। प्रश्न होता है कि ऐसा क्यों हो गया ? उत्तर स्पष्ट है कि लोग गिर गए हैं। यह तो हुई उक्ति और कृति। अब आचार तथा विचार को देख लो,इसमें बड़ा भारी भेद है। अंगरेज़ी लिखे-पढ़ों का तो सिद्धान्त ही यह है कि पब्लिक लाईफ़ (Public life) और, तथा प्राइवेट लाइफ़ (Private life) और। इनकी आभ्यान्तरिक अवस्था तो कुछ और है, परन्तु

बाहर दिखाने के लिये कुछ का कुछ बन कर दिखाते हैं। यह केवल अंगरेज़ी शिक्षा का ही फल नहीं परंच भारत के पतन-काल में तांत्रिक लोगों ने भी ऐसा मत निकाला था, कि गृह में तांत्रिक, सभा में जाकर वैष्णव, मंदिर में जाकर शिव के उपासक अपने को प्रकट करना। यही अवस्था आजकल के लोगों की है। दुःख के साधनों को दूर और सुख के साधनों को प्राप्त करने का नाम अर्थ है और जो इस अर्थ को धारण करता है, वही सच्चा विद्वान् है।

रोगी कौन है ?

जिसकी धातु पुष्ट न हो उसको रोगी कहते हैं। संपूर्ण समाचारपत्रों को उलट कर देख लो, धातु पुष्ट करने वाली औषधियों से भरे पड़े हैं और इन्हीं विज्ञापनों के सिर पर समाचार-पत्र चल रहे हैं। चांदी, लोहा आदि धातुओं को भी धातु कहते हैं, क्रिया को भी धातु कहते हैं और वीर्य को भी धातु कहते हैं। जैसे क्रिया के बिना पद नहीं बन सकता, इसी प्रकार वीर्य के बिना जीवन नष्ट हो जाता है। भारतवर्ष में एक भारी भूल पड़ रही है, यहां अग्नि के बुझाने के लिए उस पर तेल डाला जाता है। धातु की न्यूनता से तो सारी व्याधियां हैं, परन्तु फिर उसका इलाज ऐसी औषधियों से किया जाता है, जो धातु को जोश देकर जला देती हैं। औषधियों से संतान उत्पन्न की जाती है, और फिर आशा की जाती है कि वह स्वस्थ रहे।

जिसकी धातु में दोष आ गया हो उसका एक ही यत्न है और वह यह है कि वह एक वर्ष तक मन, वाणी और कर्म

से ब्रह्मचारी रहे, सब दोष दूर हो जाएंगे । परन्तु एक कवि ने कहा—पन्दे हक कड़वी लगे इन्सान को अफसोस, आह !

इन बातों को सुनता कौन है? जिस प्रकार कुपथ्य करने वाला रोगी वैद्य को कसाई की तरह देखता है उसी प्रकार ब्रह्मचर्य आप को बुरा लगता है । समग्र रोग आपने स्वयं उत्पन्न किये हैं; परमात्मा ने उनको उत्पन्न नहीं किया।

इस समय के जितने भी रोग हैं वह मनुष्यों ने स्वयं सहेड़े हैं और अनुभव से ऐसा प्रतीत होता है कि सौ में निन्यानवें मनुष्य धातु के रोग में ग्रस्त हैं।

इसलिए यदि आप इन रोगों से बचना चाहते हैं तो ब्रह्मचारी बनो।

अफ़लातून का पुत्र जब बहुत बड़ा हो गया तो अफ़लातून की स्त्री को एक और पुत्र की इच्छा हुई। उसने पुत्र को सिखलाया और पुत्र ने अपने पिता से कहा कि यदि मेरा एक भाई और हो जाय तो क्या ही अच्छा हो, हम दोनों खेलें।

अफ़लातून ने उत्तर दिया कि जाओ मैं पहले ही पछता रहा हूं, यदि मैं तुझे उत्पन्न न करता तो मैं संसार में अकेला होता और मेरा सारा मस्तिष्क फ़िलासफ़ी में लग जाता। प्राचीन विद्वान् लोग वीर्य की इतनी कदर करते थे परन्तु हम वीर्य को ऐसा समझते हैं जैसा नाक से मल साफ कर दिया।

स्वामी जी के जीवन की एक कथा

पिछले देहली दर्बार में जब मैं गया, तो ग्वालियार के एक मारवाड़ी ने मुझे स्वामी जी के जीवन की कथा सुनाई। उसने बतलाया कि स्वामी जी के उपदेशों की चर्चा सुन कर

एक प्रतिष्ठित मुसलमान भी उनके पास गया, परन्तु उसका मुख सर्वदा उदास रहता था। स्वामी जी ने कारण पूछा, उसने उत्तर दिया मेरे कई बच्चे हुए हैं परन्तु जीता कोई नहीं है इसलिए मन सर्वदा उदास रहता है। स्वामी जी ने कहा कि उपाय तो हम बतला देते हैं परन्तु है कुछ कठिन, यदि तुम करो तो हम विश्वास दिलाते हैं कि तुम्हारे घर पुत्र उत्पन्न होगा और जीता रहेगा। उसने स्वामी जी के चरण पकड़ लिये और कहा कि महाराज जो कुछ आप कहेंगे, मैं करूंगा। स्वामी जी ने कहा कि सब से बड़ी शर्त एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य रखने की है, यदि यह स्वीकार हो तो अपनी स्त्री से पूछ कर आओ कि वह भी स्वीकार करती है अथवा नहीं। वह घर गया और दूसरे दिन आकर कहा कि महाराज हम दोनों स्वीकार करते हैं। स्वामी जी ने गर्म वस्तुएं, मांस, मदिरा आदि छोड़ने के लिये कहा। एक वर्ष उन्होंने ब्रह्मचर्य करके पुत्र उत्पन्न किया और वह इस समय उनके घर में जीवित है। ब्रह्मचर्य से वीर्य के सब दोष दूर हो जाते हैं।

ब्रह्मचर्य जैसा पुरुष के लिये है वैसा स्त्री के लिये भी आवश्यक है। आपने ईंटें बनती कई बार देखी होंगी। यदि मिट्टी नर्म हो तो भी ईंट ख़राब हो जाती है, यदि सांचा ढीला हो तब भी ईंट टेढ़ी हो जाती है। यदि सांचा और मिट्टी दोनों ही ख़राब हों तब तो क्या कहना है। यही दशा मनुष्य के बच्चे की है, जब तक स्त्री और पुरुष दोनों ही दोष-रहित न हों बालक बलवान् उत्पन्न नहीं हो सकता। जन्तुओं को परमात्मा ने एक एक गुण दिया है, कोकिला का कण्ठ सुरीला, तोते का

नाक अच्छा, मृग के नयन सुन्दर, परन्तु मनुष्य के बच्चे में ईश्वर ने सम्पूर्ण गुण इकट्ठे कर दिये हैं। अब यदि हम अपने दुष्कर्मों से उन्हें ख़राब उत्पन्न करें तो इसमें परमात्मा का क्या अपराध ? प्राचीन काल में मनुष्य ऐसे उत्पन्न नहीं हुआ करते थे जैसे कि आजकल के हम हैं।

प्राचीन काल के आदर्श भीम, अर्जुन, राम और हनुमान जैसे मनुष्य थे और यह केवल ब्रह्मचर्य का प्रताप था। अब भी यदि दुष्ट विचारों की ठोकर न लगे तो पचीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य रखना कोई बड़ी बात नहीं।

विश्वास की आवश्यकता

विद्या और ब्रह्मचर्य के पश्चात् तीसरी आवश्यक बात प्रत्य अर्थात् विश्वास है। जितना जगत् में किसी का विश्वास है उतना ही उसका गौरव है। जिस प्रकार वृक्षों के लिये जल है उसी प्रकार मनुष्यों के लिये विश्वास है। इसलिये सबसे पहले अपने आप पर विश्वास करो। जब तुम्हें अपने पर विश्वास नहीं तो दूसरों को कैसे तुम्हारा विश्वास होगा ? जो जाति विश्वास से शून्य हो जाती है उसका कोई ठिकाना नहीं रहता; संसार में वह नीच समझी जाती है।

स्वामी विवेकानन्द ने अपनी पुस्तक में एक शोकजनक गाथा लिखी है। वे लिखते हैं, जापान में जब कोई भारत-निवासी जाता तो वे उसका बड़ा आदर सन्मान करते और छाती से लगाते थे। वहां एक बड़ी भारी लाईब्रेरी है जिसमें हर एक को जाने की आज्ञा नहीं, परन्तु भारत-निवासियों के लिये उसका भी दरवाजा खुला था, परन्तु एक ऐसी शोक-जनक घटना हुई जिसने सदा के लिये उस लाईब्रेरी का

दर्वाज़ा भारतीयों के लिये बंद कर दिया और उनका विश्वास खो दिया। एक बार लाईब्रेरी में एक भारतनिवासी पुस्तक पढ़ रहा था। पुस्तक का एक पृष्ठ उसे ऐसा पसन्द आया कि आंख बचा कर उसने वह पृष्ठ फाड़ लिया और चल दिया, परन्तु देख रेख पर पकड़ा गया और उसी दिन से भारतीयों के लिये उस लाईब्रेरी का दर्वाज़ा बन्द हो गया।

यही दशा धर्म की है, प्रत्येक मनुष्य को यह समझना चाहिए कि जितना मैं उन्नत हूंगा उतना मेरा धर्म उन्नति करेगा, और जितना मैं दुष्कर्म करूंगा उतना ही अपयश मेरे धर्म का होगा। स्वामी जी ने भी अपनी पुस्तकों में परस्पर-विश्वास पर बड़ा बल दिया।

शुक्र का उदय और अस्त

आजकल जो पत्रियां वर्त्तमान हैं उन में एक बड़ी विचित्र बात होती है। लिखा होता है, कि अमुक मास में शुक्र का उदय होगा और अमुक मास में अस्त। शुक्र के उदय के मास में विवाह होते हैं, शेष में नहीं। वे शुक्रसे शुक्र तारे का अर्थ लेते हैं, परन्तु यह उनकी भूल है। विवाह का तारे के साथ कोई संबन्ध नहीं और यदि तारे से प्रयोजन होता तो आज हिन्दुओं में असंख्य विधवाएं दिखाई न देतीं। यहां शुक्र से अभिप्राय है वीर्य का, अर्थात् उस पुरुष से विवाह कराना चाहिये जो वीर्यवान् हो, जिसका शुक्र व वीर्य, उदय हो। जिनका शुक्र उदय होता है, उनके मुखमंडल पर सेब की तरह लाली आ जाती है, परंतु यहां मैं देखता हूं सब के चेहरों पर स्याही और ज़र्दी छा रही है। वही मनुष्य सफल होते हैं जिनमें विद्या, ब्रह्मचर्य और विश्वास तीनों गुण होते हैं।

मनुष्य जीवन की सफलता

सज्जन महानुभावो ! वेद कहता है परमेश्वर महान् है। सब पदार्थ उसके गर्भ में हैं। मनुष्यमात्र के लिये उसी की पूजा-उपासना करनी चाहिये। उसका विज्ञान तारा-मण्डल के देखने से पूर्ण प्रतीत होता है। जैसे प्रत्येक वृक्ष का आधार उस का मूल है उसी प्रकार समस्त संसार का आधार परमेश्वर है। संसार के सारे पदार्थ परिवर्तनशील हैं परन्तु परमात्मा एकरस है। जिसको यह आवश्यकता हो कि वह एक जैसा रहे उसको उचित है कि वह परमात्मा की उपासना करे। जीवात्मा की उन्नति के लिये उसकी उपासना के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं।

स्वार्थ-त्याग ही सफलता की कुञ्जी है

जब तक मनुष्य से स्वार्थ का परित्याग न हो जाय, उस की मुक्ति नहीं हो सकती। एक परिवार अथवा देश क्यों बिगड़ जाता है, इसलिये कि उसमें स्वार्थ की मात्रा बढ़ जाती है। जितनी खुदगरजी किसी में बढ़ जायगी उतना ही शीघ्र वह नष्ट हो जायगा। स्वार्थ का त्याग ही मनुष्य के सुधार का सच्चा मार्ग है। वेदों और उपनिषदों में इसके अनेक दृष्टान्त हैं। अमरीका और अन्य उन्नत देशों की अवस्था सुनकर हमारे मुंह में भी पानी भर आता है; परन्तु हम उन साधनों पर विचार नहीं करते जिनकी कृपा से उन्होंने उन्नति

की है। एक रूप में तो हमारा देश भी इस समय अमरीका बना हुआ है। अमरीका में एक रुपये का तीन छटांक से अधिक घी नहीं मिलता। अब यहां भी पांच छटांक से अधिक नहीं। वहां तो ३ छटांक घी खरीद कर निर्वाह हो जाता है क्योंकि वहां रुपया बहुत है, परन्तु यहां रुपया इतना नहीं है इसलिये यहां घोर आपत्ति आने वाली है। आपने वह गोला अवश्य देखा होगा जो विवाह शादी के अवसर पर चलाया जाता है, उस गोले में बारूद और छोटे-छोटे कंकर भरे जाते हैं, ज्योंहि गोले को आग दिखलाई अथवा भूमि पर पटका, गोला फट गया। गोला फटने पर सब से अधिक हानि उस मनुष्य की होती है जो उसके निकट होता है, जिसे नज़दीक से तमाशा देखने के स्वार्थ ने दबाया हुआ था। यदि उन्नति के मार्ग पर चलना है तो स्वार्थ को छोड़ दो अन्यथा उन्नति की बातें करना छोड़ दो।

ऋषि दयानन्द स्वार्थ से कितना परे थे इसके लिये एक दृष्टान्त देता हूं—

मैं एक बार छपरा में गया, तो देखा कि एक मन्दिर का पुजारी बड़े प्रेम से हवन कर रहा है। मैंने उससे पूछा—महाराज! यह क्या? मूर्ति पूजा और हवन! उसने बतलाया हवन से प्रेम मुझे स्वामी दयानन्द की कृपा से हुआ है। मन्दिर की पूजा तो पेट के कारण है, मेरा सच्चा विश्वास इस पर नहीं है। जब स्वामी दयानन्द शास्त्रार्थ करने जाते थे तो मैं उनकी पुस्तकें उठाकर ले जाता था। इस पुजारी ने मुझे स्वामी जी के जीवन की एक घटना इस प्रकार सुनाई—

छपरा के पास एक छोटी सी रियासत है वहां के रईस ने अपने पण्डितों से कहा कि वे स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ करें। सोलह पण्डित मिलकर शास्त्रार्थ के लिये उद्यत हुए। रईस ने सोलह चौकियां एक ओर बिछा दीं और उनके सन्मुख दूसरी ओर एक चौकी बिछा दी। जब वे सोलह पण्डित आकर चौकियों पर बैठ गये तो उस रईस महाशय ने अपना सेवक स्वामी जी की ओर भेजा। छ फुट और पांच इञ्च का जवान जिस समय कमरे के अन्दर प्रविष्ट हुआ तो पण्डित लोग भौंचक्के रह गये। साहस न पड़ा कि स्वामी जी से बात कर सकें, परन्तु कुछ तो कहना ही था रईस महाशय की ओर मुंह करके बोले, आपने मारे लिये लकड़ी की चौकियां मंगाई हैं और स्वामी जी के लिये सफ़ेद पत्थर की; आपने हमारा अपमान किया है, हम शास्त्रार्थ नहीं करते। जब उठकर चलने लगे तो स्वामी जी ने कहा कि मैं भी संगमर्मर की चौकी को छोड़ता हूं, आओ भूमि पर बैठ कर शास्त्रार्थ करें। यह था स्वार्थ-त्याग !

परन्तु यहां दशा क्या है, इतने आर्य पुरुष बैठे हैं, सन्ध्या उपासना तो करते होंगे, परन्तु प्रेम से स्वार्थ-रहित होकर नहीं। कुर्सी पर बैठे हैं तो वहीं करली, हाथ मुंह धोया है या नहीं, इसकी कुछ पर्वाह नहीं। अर्थात् सन्ध्या भी करेंगे तो स्वार्थ के साथ जिससे पांच सात मिण्ट की हानि न हो, वैसे गप्पें हांकने में चाहे सारा दिन व्यतीत हो जाय।

एक पुरुष चारपाई पर बैठा माला फेर रहा था। एक मनुष्य उसकी छत पर चढ़कर नाचने लग गया। उसने

पुकारा, ऊपर कौन है ? उत्तर मिला कि ऊँट नाच रहा है। वह चकित होगया और पूछा कि चार मंज़िले ऊपर ऊंट कैसे चढ़ सकता है ? ऊपर वाले ने उत्तर दिया, जैसे चारपाई पर चढ़ कर ईश्वर की उपासना हो सकती है।

किसी मेले में एक वैश्य का लड़का गिर गया, लोगों ने उसके पिता को आकर बतलाया। उसने कहा वैश्य का लड़का कभी बिना प्रयोजन नहीं गिरता, अवश्य किसी स्वार्थ से गिरा होगा। लोग आश्चर्य में रह गये कि यह मनुष्य अच्छा है, इसका लड़का गिरा और उसको चोट आई, परन्तु यह कहता है कि किसी स्वार्थ से गिरा होगा। कुछ समय के पश्चात् लड़का घर पहुंचा, पिता ने पूछा कि कैसे गिरा था ? लड़के ने उत्तर दिया कि भूमि पर एक सोने की मोहर पड़ी हुई थी, मैं यदि उसे वैसे ही झुक कर उठा लेता तो लोग मुझ से छीन लेते। मैं गिर कर चिल्लाने लगा कि मुझे चोट लगी है और इस बहाने से मोहर मुंह में डाल ली; लोगों ने मुझे मिठाई ले दी। होते होते यह बात लोगों तक पहुचं गई कि वैश्य का लड़का बिना स्वार्थ के नहीं गिरता। अब यदि सचमुच भी किसी वैश्य को चोट आए तो कोई उससे सहानुभूति नहीं करता।

उपनिषदों में एक गाथा आई है कि एक बार इन्द्रियों का परस्पर विवाद हो पड़ा और प्रत्येक इन्द्रिय अपने आप को बड़ा समझने लगी। सब बारी बारी शरीर में से निकल गई परन्तु शरीर जीवित रहा। परन्तु जब प्राण निकले तो शरीर मर गया, क्योंकि प्राणों में स्वार्थ नहीं। वे जो कुछ लेते

हैं इन्द्रियों को बांट देते हैं अपने पास कुछ नहीं रखते। जो लोग प्राणों के समान स्वार्थ का परित्याग करके संसार में रहेंगे, उन्हीं व्यक्तियों और जातियों का कल्याण होगा। संसार में ऐसे भी लोग हैं जो अपना स्वार्थ पूरा करके भी काम बिगाड़ देते हैं। वेद कहते हैं कि ऐसे मनुष्य बहुत अधोगति को प्राप्त होते हैं। किसी ने कहा है—

घटे जब वैर विरोध विकार, बढ़े तब विनय विवेक विचार।
होवे सुखद समाज सुधार, तभी हो भारत का उद्धार॥

विरोध के रहते हुए विवेक और सुधार कैसे रह सकते हैं? संसार में पिता पुत्र, माता पिता और भाई बहन के अतीव निकट सम्बन्ध हैं, परन्तु अवस्था यह है कि न भाई भाई के कहने में है, न पुत्र पिता की आज्ञा में है। फिर उन्नति हो तो कैसे? अंगरेज़ी वालों का सिद्धान्त है कि निर्बल संसार में नहीं रह सकते। यह सिद्धान्त पशुओं और जानवरों की अवस्था में तो ठीक है परन्तु मनुष्यों की अवस्था में नहीं। यदि मनुष्यों की अवस्था में भी यही सिद्धान्त काम करे तो फिर मनुष्यों और पशुओं में क्या भेद रह गया? न्याय यह चाहता है कि बलवान् निर्बलों की रक्षा करें क्योंकि बल दो कमज़ोरी की अवस्थाओं में विद्यमान् है। बालपन की अवस्था कमज़ोरी की अवस्था है, उसके पश्चात् यौवन और अन्त में बुढ़ापा फिर कमज़ोरी की अवस्था। इसलिये बल और यौवन पर जो अभिमान करे उससे बढ़कर मूर्ख कौन हो सकता है?

स्वामी जी लिखते हैं बढ़ी हुई शक्तियां केवल स्वार्थवश होकर गिरती हैं। अभिमान गिरावट की पहली सीढ़ी है। जातियों के इतिहास को पढ़ कर देखो किस प्रकार उन्होंने

पुकारा, ऊपर कौन है ? उत्तर मिला कि ऊँट नाच रहा है। वह चकित होगया और पूछा कि चार मंज़िले ऊपर ऊंट कैसे चढ़ सकता है ? ऊपर वाले ने उत्तर दिया, जैसे चारपाई पर चढ़ कर ईश्वर की उपासना हो सकती है।

किसी मेले में एक वैश्य का लड़का गिर गया, लोगों ने उसके पिता को आकर बतलाया। उसने कहा वैश्य का लड़का कभी बिना प्रयोजन नहीं गिरता, अवश्य किसी स्वार्थ से गिरा होगा। लोग आश्चर्य में रह गये कि यह मनुष्य अच्छा है, इसका लड़का गिरा और उसको चोट आई, परन्तु यह कहता है कि किसी स्वार्थ से गिरा होगा। कुछ समय के पश्चात् लड़का घर पहुंचा, पिता ने पूछा कि कैसे गिरा था ? लड़के ने उत्तर दिया कि भूमि पर एक सोने की मोहर पड़ी हुई थी, मैं यदि उसे वैसे ही झुक कर उठा लेता तो लोग मुझ से छीन लेते। मैं गिर कर चिल्लाने लगा कि मुझे चोट लगी है और इस बहाने से मोहर मुंह में डाल ली; लोगों ने मुझे मिठाई ले दी। होते होते यह बात लोगों तक पहुचं गई कि वैश्य का लड़का बिना स्वार्थ के नहीं गिरता। अब यदि सचमुच भी किसी वैश्य को चोट आए तो कोई उससे सहानुभूति नहीं करता।

उपनिषदों में एक गाथा आई है कि एक बार इन्द्रियों का परस्पर विवाद हो पड़ा और प्रत्येक इन्द्रिय अपने आप को बड़ा समझने लगी। सब बारी बारी शरीर में से निकल गईं परन्तु शरीर जीवित रहा। परन्तु जब प्राण निकले तो शरीर मर गया, क्योंकि प्राणों में स्वार्थ नहीं। वे जो कुछ लेते

हैं इन्द्रियों को बांट देते हैं अपने पास कुछ नहीं रखते। जो लोग प्राणों के समान स्वार्थ का परित्याग करके संसार में रहेंगे, उन्हीं व्यक्तियों और जातियों का कल्याण होगा। संसार में ऐसे भी लोग हैं जो अपना स्वार्थ पूरा करके भी काम बिगाड़ देते हैं। वेद कहते हैं कि ऐसे मनुष्य बहुत अधोगति को प्राप्त होते हैं। किसी ने कहा है—

घटे जब वैर विरोध विकार, बढ़े तब विनय विवेक विचार।
होवे सुखद समाज सुधार, तभी हो भारत का उद्धार॥

विरोध के रहते हुए विवेक और सुधार कैसे रह सकते हैं? संसार में पिता पुत्र, माता पिता और भाई बहन के अतीव निकट सम्बन्ध हैं, परन्तु अवस्था यह है कि न भाई भाइ के कहने में है, न पुत्र पिता की आज्ञा में है। फिर उन्नति हो तो कैसे? अंगरेज़ी वालों का सिद्धान्त है कि निर्बल संसार में नहीं रह सकते। यह सिद्धान्त पशुओं और जानवरों की अवस्था में तो ठीक है परन्तु मनुष्यों को अवस्था में नहीं। यदि मनुष्यों की अवस्था में भी यही सिद्धान्त काम करे तो फिर मनुष्यों और पशुओं में क्या भेद रह गया? न्याय यह चाहता है कि बलवान् निर्बलों की रक्षा करें क्योंकि बल दो कमज़ोरी की अवस्थाओं में विद्यमान् है। बालपन की अवस्था कमज़ोरी की अवस्था है, उसके पश्चात् यौवन और अन्त में बुढ़ापा फिर कमज़ोरी की अवस्था। इसलिये बल और यौवन पर जो अभिमान करे उससे बढ़कर मूर्ख कौन हो सकता है?

स्वामी जी लिखते हैं बढ़ी हुई शक्तियां केवल स्वार्थवश होकर गिरती हैं। अभिमान गिरावट की पहली सीढ़ी है। जातियों के इतिहास को पढ़ कर देखो किस प्रकार उन्होंने

स्वार्थ-रहित होकर भावी सन्तानों के लिए मैदान साफ़ किया। अपने इतिहास में रामचन्द्रजी का समय देख लो, केकयी ने स्वार्थवश होकर रामन्द्रजी को सिंहासन से वंचित किया, परन्तु भरत ने इतना स्वार्थ-त्याग किया कि आज जगत् में उसका नाम अमर है।

एक ओर रामायण में भरत का त्याग है तो वहां दूसरी ओर महाभारत में दुर्योधन का स्वार्थ है जिसने देश को इस अधोगति को प्राप्त कराया।

स्वार्थ-त्याग का एक और उदाहरण

शाहजहां की बेटी बीमार हुई, वैद्यों हकीमों का इलाज किया, आराम न हुआ। किसी ने कहा कि डाक्टर बाटन नामी एक अंग्रेज डाक्टर है, उसका इलाज कराएं। डाक्टर बाटन को बुलाया गया, उसके हाथ से रोग दूर हो गया। बादशाह ने कहा, मांगे आप क्या मांगते हैं? शाहजहां का विचार था कि यह चार-पांच हज़ार रुपया मांगेगा अथवा कुछ भूमि। परंतु बाटन के स्वार्थ-त्याग को देखिए कि वह अपने लिये कुछ नहीं मांगता, मांगता है तो यह कि अंग्रेज जो यहां व्यापार करने आते हैं, उनसे महसूल न लिया जाय और उन्हें प्रत्येक स्थान पर बिना रोक-टोक व्यापार करने की आज्ञा दी जाय। उस समय यह बात साधारण जान पड़ी परन्तु इस थोड़ से स्वाथ-त्याग का फल अंग्रेज़ों का राज्य हो गया। भारत चाहे निकम्मा होगया है परन्तु अब भी जैसी उपज और जैसा अन्न-जल इस देश का है, किसी दूसरे देश का नहीं। स्वयं भूखा रह कर संसार को तृप्त करना भारत का ही काम है, इसलिए जहां स्वयं स्वार्थ का त्याग करो, आने वाली सन्तति को भी यही पाठ पढ़ाओ।

तप क्यों करें ?

संसार में कोई भी काम ऐसा नहीं है जिसके करने का साधन तप सिद्ध न हुआ हो। मनुष्य के जीवन में तप ही सार है इसके बिना मनुष्य का सम्पूर्ण पुरुषार्थ व्यर्थ है। तप ही निर्बलों को बलवान् बनाता है और पतितों को फिर से प्रतिष्ठा के मार्ग पर चलाता है। तप ही की सहायता से महात्मा लोग दुखित लोगों को संकट से बचाते हैं, यही कारण है कि उनके नाम सूर्य्य की न्याईं संसार में जगमगाते हैं। जिसके प्रभाव से महात्मा बुद्ध के आगे संसार ने शीश झुकाया, जिसकी शक्ति से शङ्कराचार्य ने वेदविरुद्ध नास्तिक मत को दबाया, जिससे ऋषि दयानन्द जी महाराज ने वेदों का सत्य मार्ग संसार को दिखाया, वह तप ही तो है।

कहां तक कहें जितने महात्मा, महानुभाव व भद्र पुरुष संसार में हुए, हैं, और होंगे, जिनका उद्देश्य कष्ट उठाकर भी जनता को हित और अहित का मार्ग दिखाना होता है, वे सब तपस्वी ही होते हैं।

परन्तु यह बात इसमें आवश्यक है कि सुधारक के जीवन में जितना अंश तप का अधिक होता है उसका किया हुआ कार्य्य उतना ही फलता फूलता जाता है।

सृष्टि की उत्पत्ति भी ईश्वर के तपोबल के आधीन है जो उसकी सत्ता में विद्यमान् है। इस विषय में उपनिषदों की साक्षी है, नक्षत्र मंडल की रचना जिस तपोबल के आधीन

है उसकी महिमा को सर्वसाधारण नहीं जान सकते, कोई योगी ही जान सकता है। आओ, तनिक विचार करें। हमारी दृष्टि में हिमालय पर्वत सबसे बड़ा प्रतीत होता है, परन्तु कुछ ज्ञान-दृष्टि के बढ़ने से यह भूगोल जिस पर हम बसते हैं हिमालय से कहीं बड़ा दीखता है। अब भूमण्डल महान् प्रतीत होने लगा। परन्तु आगे चलकर जब सूर्य्य-मण्डल पर ज्ञान-दृष्टि का अधिकार हुआ, जो भूगोल से तेरह लाख गुना के लगभग है, भूमि की वही स्थिति हो गई जो भूमि के आगे हिमालय की थी। अब जब विचार का एक पग और आगे बढ़ा, तो अनन्त भूगोल, सूर्य्य और कोटानुकोटि तारागण इस वृहद् आकाश के गर्भ में लटकते और घूमते हुए अपने स्वामी के भय से मर्य्यादा का पालन करते और उसके गुण गाते हुए उस जगदीश्वर की सत्ता, महिमा और विभूति का स्मरण दिला रहे हैं।

जब उसकी उपासना और भक्ति से योगी का अन्तः करण विशाल हो जाता है तो वह आकाश जिसमें कोटानु-कोटि तारागण लटकते हुए दीख पड़ते हैं एक सूई के छिद्र के बराबर दिखाई देने लगता है। यह योगी का परम स्थान है, मनुष्य की उच्चतम डिगरी है, परन्तु यह उसी को प्राप्त हो सकती है जो तपोबल को धारण करता है। तप के प्रभाव से जब मल और विक्षेप का अभाव हो जाता है तो आत्मा का निज का बल जो दुष्ट संस्कारों से दबा हुआ था, निर्मल हो कर सत्कर्मों के अनुष्ठान, सत्सङ्ग और अनुभव से शनैः शनैः विस्तार पकड़ने लगता है। इस प्रकार तपस्वी का अन्तःकरण

सद्गुणों का केन्द्र हो जाता हैं।

मनुष्य का आकार तो एक सा है परन्तु मनुष्य का आचार अच्छा बनाने के लिये मनुष्य को तप की बड़ी आवश्यकता है। जहां तप है वहां ओज, वर्चस और तेज विद्यमान् हैं; ऐसी सामग्री को पाकर मनुष्य अपने आपको परोपकार करने के लिये सहानुभूति के मार्ग पर खड़ा कर देता है।

परन्तु पूर्व-जन्म-कृत सत्कर्म्मों की सहायता और ईश्वर की कृपा के बिना ऐसी शक्ति का प्रगट होना सम्भव नहीं। जब ईश्वर की कृपा और पूर्व-जन्म-कृत सत्कर्म मनुष्य के सहायक होते हैं तब ही ऐसी शक्ति प्रगट होती है।

जिस प्रकार बरसने के समय बादल पृथ्वी की ओर उसकी तप्त बुझाने और फल-फूल उगाने के लिये झुक-झुक कर बरसते हैं, इसी प्रकार अविद्या से प्रमाद और आलस्य में फंस कर उस जगदीश्वर को भूले हुए लोगों को फिर से परम-पिता परमात्मा की उपासना की विधि सिखाने और उल्टे मार्ग से हटाने में तपस्वी का आत्मा पूर्णतया झुक जाता है।

इसलिये तपस्वी वह है जो पहले सद्गुणों को प्राप्त करता है और पश्चात् आयु के दूसरे भाग में जगत् को उन्हीं गुणों से युक्त बनाने में यत्न करता है और कीर्ति को प्राप्त करता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार ही मनुष्य को गिराने वाले गुप्त शत्रु हैं। जो मनुष्य इनको अपने अनुकूल बना लेता है वह तपस्वी है और जो उनके अनुकूल हो जाता है वह तपहीन बुद्धि-मलीन हो जाता है। तपस्वी ऋषि दया-

नन्द जी महाराज के पवित्र चरित्र की विचित्रता पर ध्यान दें। कामना यदि थी तो सबके हित की, स्वार्थ नाममात्र का भी न था।

शारीरिक बल रखने पर भी गाली का उत्तर गाली, ईंट-पत्थर का उत्तर ईंट-पत्थर से न देकर बारम्बार लोगों के हित की चिन्ता करना क्रोध से रहित होने का प्रमाण है। लाखों की आमदनी के स्थान मिलने पर सच्चाई के आगे उनको तुच्छ समझना, उनके लोभरहित होने का परम प्रमाण है। परमेश्वर का स्मरण और उसकी प्राप्ति के लिए सुखसम्पन्न घर को छोड़ देना वीतराग होने का पूरा प्रमाण है। अहंकार न होना इस बात से स्पष्ट है कि अनाथों की रक्षा, पतितों का उत्थान, निरभिमान पुरुषों के बिना कौन कर सकता है? ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने पर भी अनुचित अभिमान में फंसी हुई ब्राह्मण जाति का पक्षपात न करना, गुण कर्मों की प्रधानता से सब से उच्चपद पाने का अधिकारी मानना अहंकार के न होने के प्रमाण है। ऐसे महात्मा ही संसार के सुधारक हो सकते हैं। सज्जनों! आप उनके जीवनचरित्र पढ़ो, और उसके अनुकूल कार्य्य करो, यही मार्ग तुम्हारे आत्मा को उच्च बना सकेगा।

ऋषि जीवन से शिक्षा

जब हम ऋषि दयानन्द के जीवन पर दृष्टि डालते हैं, तो पता लगता है कि उनके जीवन का उपक्रम और उपसंहार कैसा विचित्र है, और हम में और उन में कितना भेद है! परमात्मा ने सब मनुष्यों को एक-सी शक्तियां दी हैं। जो उनको सम्भाल कर रखता है उस पर ईश्वर की दयालुता नहीं कह सकते किन्तु वह प्रसन्न दीख पड़ता है। और जो उन दी हुई शक्तियों को नहीं सम्भालता उस पर ईश्वर का क्रोध नहीं कह सकते परन्तु वह दुखी जान पड़ता है। बात सीधी है, जो जिसकी आज्ञा का पालन करता है, वह उस पर प्रसन्न है और उसकी छाया उस पर पड़ती है। जिसने ईश्वर की आज्ञा का साङ्गोपाङ्ग पालन किया है, वह ईश्वर की प्रसन्नता का पात्र बन जाता है। संसार में तीन प्रकार के जीवन दिखाई देते हैं। एक वे लोग हैं जो अपने जीवन से सैकड़ों मनुष्यों को सुखी बनाते हैं, दूसरे वे जो अपने जीवन से सैकड़ों को दुखी बना देते हैं, और तीसरे वे जो न सुखी और न दुखी बनाते हैं। जो अपने जीवन से लोगों को सुखी बनाते हैं, वे ऐसे लोग होते हैं जिन्होंने परमात्मा की आज्ञा का पालन किया है, ऐसे मनुष्य उस जलते हुए दीपक की न्यांई हैं जो अपनी लौ से सैकड़ों को प्रकाशित करता है। ऐसे स्वाभाविक दीपक को तीक्ष्ण से तीक्ष्ण वायु बुझा नहीं सकता परन्तु कृत्रिम दीपक थोड़े से वायु से बुझ जाता है। इसी प्रकार ऋषियों का जीवन परमात्मा से लिया होता है, उसको बाहर की शक्तियां बुझा नहीं सकतीं, परन्तु मनुष्यों के जीवन पर प्रत्येक

बाहर की शक्ति अपना प्रभाव डालती हैं। मैंने ऋषि के उपक्रम और उपसंहार के विषय में कहा था। उपक्रम आरम्भ और उपसंहार समाप्ति को कहते हैं। जिसका आरम्भ और समाप्ति 'आदि और अन्त' अच्छा हो, तो यह अवश्य है कि उसके जीवन का मध्य भाग भी सत्कर्मों में व्यतीत हो। हम में और ऋषियों में यही भेद है, ऋषि लोग जब पग उठाते हैं तो उसी ओर चलते हैं जिस की समाप्ति नेकी पर हो. परन्तु हम लोग अन्धाधुन्ध।

आप जानते हैं कि स्वामी जी के कार्य्य का आरम्भ परमात्मा की खोज और उसकी प्राप्ति से होता है. और उनके जीवन का उपसंहार परमात्मा के चिन्तन में होता है। आदि और अन्त को देखकर हम कह सकते हैं कि उनके जीवन का मध्य भाग भी नेकी में व्यतीत हुआ होगा। यदि मध्य भाग किसी दूसरी ओर खर्च हुआ होता तो यह असम्भव था कि अन्तिम भाग भगवान् के स्मरण में व्यतीत होता।

पुनर्जन्म का दृष्टान्त

पुनर्जन्म का दृष्टान्त ले लो। जब बालक उत्पन्न होता है तो एक प्रकार के स्वप्न से वह जागता है। उसे अपने स्वप्न की सब बातें याद होती हैं, परन्तु उसमें यह शक्ति नहीं कि उनका वर्णन कर सके। इस अवस्था में अपने पुरातन संस्कारों को स्मरण करके कभी रोता और कभी हँसता है। परन्तु जब बड़ा होता है और बोलने की शक्ति आती है तो मोह-माया में फंस कर पुरानी सब बातों को भूल जाता है। गीता में कहा है "यम् यम् वाऽपि स्मरण भावम्" मृत्यु के समय जिस बात का ध्यान आता है उससे प्रभावित होता हुआ जीव वैसे जन्म को धारण कर लेता है।

उपनिषद् में भी ऐसा कहा है, कि मरण समय में जैसा मन का संकल्प होता है, जीव वैसी ही योनियों में जाता है। जिस प्रकार इस जगत् में हम लोग पहला घर नहीं छोड़ते जब तक दूसरा न लें इसी प्रकार जीव जब तब दूसरा चोला न बन जाय पहले चोले को नहीं छोड़ सकता।

ऋषि जीवन की विलक्षणता

एक सेठ लाखों रुपये लगा कर मकान बनवाता है, मकान बनते ही वह मर जाता है। मरते समय उसको बहुत समझाया जाता है कि आप परमात्मा की ओर ध्यान करो, परन्तु बारम्बार उसका ध्यान मकान की ओर ही जाता है। किसी का ध्यान अपनी सन्तान की ओर जाता है। स्वामी जी ने कई समाजें बनाईं, कई पाठशालाएं खोलीं, संसार के उपकार के लिये और कई काम खोले, परन्तु मृत्यु के समय उन्हें किसी ऐसी बात का ध्यान नहीं आया। ध्यान आया तो उस परम परमेश्वर का जिसकी प्राप्ति के लिये कार्य्य आरम्भ किया था।

"भस्मान्त ँ शरीरं" वेद ने भी यही समझाया है, कि हे मनुष्य! शरीर के वियोग के समय उचित नहीं कि तू संसार के धन्धों में फंसे। इस समय परमात्मा का स्मरण कर जिसको भूल कर जन्म के चक्र में पड़ा था और जिसको प्राप्त करके फिर उस चक्र से छूट सकता है। परन्तु हम लोग इस बात को भूल जाते हैं, ऋषि नहीं भूलते।

ऋषि दयानन्द के प्रादुर्भाव का समय

जिस प्रकार धूम्रकेतु कभी कभी संसार पर चमकते हैं, उसी प्रकार मुक्त-आत्मा परमात्मा की आज्ञा से संसार के उपकार के

लिये कभी कभी आते हैं। स्वामी दयानन्द ऐसे ही मुक्त-आत्मा थे जिनको परमात्मा संसार के उपकार के लिये भेजता है।

स्वामी जी से पहले देश की क्या अवस्था थी, इसका अनुमान आज नहीं लग सकता। वेद शास्त्रों का जानने वाला कोई नहीं रहा था, संस्कृत के पण्डितों से यदि कोई वेद का अर्थ पूछता तो वे कहते, इनका अर्थ कुछ नहीं। देश में चारों ओर से अंधकार छाया हुआ था, ऐसे समय स्वामी दयानन्द का जीवन किसने बनाया? स्पष्ट कह सकते हैं, परमात्मा ने, किसी मनुष्य की ऐसी शक्ति न थी।

स्वामी दयानन्द का स्वप्न

मधुबन में एक साधु ने मुझे स्वामीजी के जीवन की एक घटना सुनाई जिसको सुनकर मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि स्वामीजी ने जो कुछ किया वह परमात्मा की प्रेरणा से किया। साधु ने बतलाया कि जब स्वामीजी विद्या समाप्त कर चुके तो उन्हें प्रचार का विचार हुआ परन्तु संसार के विरोध के भय से वे इस विचार को छोड़ बैठे। उसके थोड़े ही दिन पश्चात् उन्हें स्वप्न आया कि वे नदी के तीर पर विचर रहे हैं, दूर से उन्होंने एक नौका आती देखी जिसमें कुछ मनुष्य मदिरा से उन्मत्त हुए राग रंग उड़ा रहे थे, और नौका को अन्धाधुन्ध समुद्र की ओर ले जा रहे थे। कुछ दूर तक स्वामीजी भी नौका के साथ साथ तीर पर चलते गये, अन्त में जब उन्होंने देखा कि अब ज्वारभाटा दूर नहीं रहा तो स्वामीजी ने उन लोगों को पुकारा, कि तुम किधर जा रहे हो? नौका वालों ने उत्तर दिया कि हम इस नदी का अन्त देखने जा रहे हैं। स्वामीजी ने कहा कि अब समुद्र बहुत थोड़ी

दूर रह गया है, यदि आगे गए तो नौका डूब जायगी इसलिये तुम्हें उचित है कि वापस चले जाओ। शराबियों ने कहा कि हमने तुम्हारे जैसे कई साधु देखे हैं, तुम हमारे रंग में भंग डालना चाहते हो, जाओ जहां हमारा जी चाहेगा जाएँगे, तुम्हें क्या ? स्वामीजी ने उन्हें फिर समझाया परन्तु वे नहीं माने। अब उन्होंने सोचा कि ये तो मानते नहीं और ज्वारभाटा बिलकुल निकट है, यदि नौका और आगे बढ़ी तो सब डूब जाएँगे इसलिये इनकी रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है। यह सोच कर स्वामीजी नदी में कूद पड़े। ज्यों ही स्वामीजी ने नौका को हाथ लगाया, उन्होंने ईंट, पत्थर, लाठी और गालियां स्वामीजी पर बरसानी शुरू कीं, परन्तु स्वामी जी ने इसकी कुछ पर्वाह न करके अपने बल से नौका को तीर पर लगाया और फिर उन्हें डांट कर बोले, कि अब तुम तीर पर पहुँच गए हो यदि तुमने फिर नौका को नदी में चलाया तो एक-एक को पकड़ कर पीट डालूँगा। इस प्रकार उनका डांटना था कि सब की बुद्धि ठिकाने आ गई। इसके पश्चात् स्वामीजी की आंख खुल गई। कई दिन स्वामीजी इस स्वप्न और संसार की अवस्था पर विचार करते रहे। अन्त में उन्होंने निश्चय कर लिया कि चाहे मुझे कितना ही कष्ट क्यों न सहन करना पड़े, मैं अपने उपदेशों से इस घोर अन्धकार को दूर करूँगा।

स्वामी जी से पहले अवस्था क्या थी ? संस्कृत के पण्डित तो विद्यमान् थे परन्तु वैदिक ज्ञान से सर्वथा शून्य थे। दूसरी ओर साईंस का ज़ोर, जब कोई पुराणों पर शंका करता तो निरुत्तर हो जाते। उनको स्वामी जी सहारा न देते तो परिणाम क्या होता ? पुराणों को उन्होंने मानना ही न था और वैदिक ज्ञान से

वे कोरे ही थे, ईसाई हो जाते या मुसल्मान। इसलिये स्वामी जी ने पुराणों की गाथा छुड़ा कर वैदिक ज्ञान दिया और साहस दिया कि वे निर्भय होकर साईंस का युक्तियुक्त जवाब दें। सत्य तो यह है कि जहां साईंस का अन्त हो जाता है वहां से वैदिक ज्ञान का आरम्भ है।

एक आक्षेप और उसका उत्तर

आक्षेप किया जाता है कि जहां कहीं स्वामी जी को अपने प्रयोजन की बात नहीं मिली, झट कह दिया यहां मिलावट है। यह आक्षेप सर्वथा मिथ्या है। आज से तीन सौ वर्ष पूर्व गोसाईं तुलसीदास जी अपनी रामायण में लिखते हैं कि धर्म पुस्तकों में भी मिलावट की गई है। तुलसी रामायण में भी मिलावट हुई और आजकल जो रामायण छपती है उसमें से प्रक्षिप्त श्लोक निकाल दिये जाते हैं।

देखिये गोसाईं जी क्या कहते हैं—

हरित भूमितृण संकुला, लिप्त हुए सब ग्रन्थ।

यह तीन सौ वर्ष पूर्व की साक्षी है। स्वामी जी ने सत्यार्थ-प्रकाश में लिखा है, कि महाभारत से एक सहस्र वर्ष पूर्व आलस्य प्रमाद आने लग गया था। गीता इसकी साक्षी देती है। कृष्ण कहते हैं—"हे शूरवीर अर्जुन! जिन वेद शास्त्रों के अनुसार चलकर आर्य जाति विद्वान् और शूरवीर होती है उनका प्रचार दिन प्रतिदिन घट रहा है।" इससे सिद्ध हुआ कि स्वामी जी की एक एक बात का मूल विद्यमान् है।

स्वामी जी पक्षपातरहित थे

एक बार रेल में एक मौलवी बड़ी प्रतिष्ठा के साथ स्वामी जी

का नाम लेकर कह रहा था कि स्वामी दयानन्द ने इसलाम को ब्रह्मचर्य की तालीम देकर उस पर बड़ा ऐहसान किया है। दूसरे ने कहा कि उन्होंने तो क़ुरान का खण्डन किया है और तुम उनको तारीफ़ कर रहे हो। पहला मौलवी बोला, भाई, स्वामी दयानन्द बेतअस्सुब आदमी था, जिस आदमी ने अपने घरके पुराणों और दूसरी किताबों का खंडन किया, उससे यह उम्मीद रखना कि वह इसलाम के नुक़स को ज़ाहर न करे, यह फ़िज़ूल है।

सच्चा उपदेष्टा

कपिल ऋषि ने कहा है कि उपदेश करने वाला और सुनने वाला यदि दोनों मर्यादानुसार रहें तो संसार धर्म-मार्ग पर चलता है अन्यथा अन्ध-परम्परा चल जाती है। भारतवर्ष में आजकल अंध-परम्परा चल रही है। जो चाहता है नया पन्थ खड़ा कर लेता है, और लोग उसके पीछे चल पड़ते हैं। महर्षि कपिल उपदेश करने का अधिकार केवल जीवनमुक्त को देते हैं। जीवनमुक्त कौन ? जो जैसा उपदेश करे वैसा ही अपने तईं सिद्ध करे, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार उसके निकट न आये, स्तुति निन्दा में एक-रस रहे।

स्वामी दयानन्द के जीवन में हम देखते हैं कि वे कभी इन दोषों से दूषित नहीं हुए। लोग स्वामी जी को गालियां देते थे परन्तु वे उनके साथ प्रेम करते थे।

एक बार फ़रुखाबाद के हिन्दुओं और आर्यों में लड़ाई हुई। अभियोग चल पड़ा, आर्यों ने स्वामी जी से कहा कि आप साक्षी दें। स्वामी ने कहा, यदि मुझसे किसी ने पूछा तो जो कुछ मैंने देखा है कह दूँगा। आर्यों पूछा कि आप क्या कहेंगे ? उत्तर दिया

कि मैं यह कहूंगा कि इस लड़ाई में दोष आर्यों का है। वे लोग कहने लगे कि तब तो हम मारे जायेंगे और समाज को हानि पहुँचेगी। स्वामी जी ने कहा, चाहे तुम मारे जाओ, चाहे समाज न रहे, मैं तुम्हारी खातिर अपने आत्मा का हनन नहीं कर सकता।

जीवनमुक्त पुरुष और हममें भेद यह है कि उन्होंने काम क्रोध को जीता हुआ होता है, परन्तु हमने नहीं।

ऋषि के जीवन की अन्तिम झांकी

दीवाली के दिन जब ऋषि मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए थे, पचास साठ मनुष्य उनके पास थे। जब मृत्यु का समय निकट आया, स्वामीजी ने सबसे पहले कहा "कुछ प्रकाश, कुछ अन्धेरा!" इसका अर्थ जहां तक मैं समझा हूँ यह था कि दीपमाला की रात्रि अन्धेरी होती है, और लोग इस रात प्रकाश करते हैं, तो कुछ रात अन्धेरा रहता है और कुछ प्रकाश। अथवा इसका अर्थ यह समझ लो कि ऋषि के उपदेशों से कुछ लोगों को प्रकाश हो गया है, और कुछ अन्धेरे में हैं। पता नहीं लोग अन्धेरे की ओर पग बढ़ाएंगे अथवा प्रकाश की ओर ?

ऋषि ने दूसरी बात यह कही कि सब मेरे पीछे खड़े हो जाओ। इसका अभिप्राय यह था कि स्वामी जी का लक्ष्य उस समय केवल एक परमात्मा था, वे अपने सन्मुख किसी दूसरी वस्तु को नहीं चाहते थे। दूसरा अर्थ यह है कि स्वामी जी ने उस समय कहा कि अब मैं तो नहीं रहूँगा तुमने मेरे मार्ग का अनुसरण करना।

ऋषि ने तीसरी बात यह कही कि सब दरवाज़े खोल दो। पूछा गया, ऊपर का भी, उत्तर मिला ऊपर का भी खोल दो।

चारों ओर दरवाज़े तो सांसारिक सुख के लिये हैं, और ऊपर का दरवाज़ा परमात्मा की ओर ले जाने वाला है। अथवा यह तात्पर्य समझ लो कि हिन्दुओं ने सबके लिये दरवाज़े बन्द कर रखे थे, स्वामी जी ने अन्तिम वसीअत यह की कि सबके लिये दरवाज़े खोल दो। वैदिक धर्म मुसल्मान ईसाई सबके लिये खुला रहना चाहिये।

मृत्यु समय में स्वामी जी ने यह तीन उपदेश दिये। मरते समय जो बात कही जाती है वह अपूर्व फल रखती है, क्योंकि वह मृतक की कामना होती है। इस अन्तिम वसीअत को प्रत्येक आर्य के हृदय में स्थान मिलना चाहिये।

यदि आज हम स्वामी जी के दर्शन करना चाहें तो नहीं कर सकते, परन्तु सत्यार्थप्रकाश में उन्होंने अपने विचारों को प्रगट कर दिया है, उसका स्वाध्याय करने से उनके साथ बात हो सकती है। ऋषियों के ग्रन्थों को पढ़ने से हम ऋषियों के मार्ग पर चल सकते हैं।

पण्डित गुरुदत्त जी स्वामी जी की युक्तियों से तो निरुत्तर हो जाया करते थे, परन्तु मन नहीं मानता था कि परमात्मा सचमुच कोई है। परन्तु ऋषि का मृत्यु का दृश्य देखकर सब संशय मिट जाते हैं, इनको साक्षात् हो जाता है कि सचमुच कोई परमात्मा है। ऋषि क्यों हंसते हुए प्राण देते हैं, इसका दृष्टान्त देता हूँ।

एक मनुष्य गढ़ा खोद रहा था। खोदते खोदते कुदाल उसके पाओं पर लगी, बड़ा गहरा घाव हो गया और रक्त की धार बहने लगी, पीड़ा से वह व्याकुल हो रहा था कि मिट्टी में उसने एक छोटी सी पोटली बन्धी देखी। उठा कर देखा तो उसमें कुछ सोने

की मोहरें बन्धी थी। सब दुखों को भूलकर घर को दौड़ा और आकर चारपाई पर लेट गया। आपने देखा कि कठोर से कठोर यातना हर्ष के सन्मुख तुच्छ हो जाती है। इसी प्रकार ऋषि के सन्मुख मृत्यु के मुकाबिले में जब आनन्दस्वरूप परमात्मा होते हैं तो वे प्रसन्नतापूर्वक शरीर को छोड़ देते हैं। आप भी यत्न करो, कि जगत् में रोते आओ और हंसते जाओ। आप के सन्मुख ऋषि दयानन्द का आदर्श है जिसने हंसते हंसते कहा था "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो" और प्राण त्याग दिये थे।

जो बल दयानन्द में था वही बल आप में आना चाहिये, और यह तब हो सकता है जब कि आप ऋषि के अन्तिम वचनों और उनकी अन्तिम वसीअत पर चलेंगे।

मन कैसे वश में हो ?

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रन्तन्नआसुव। यजु० अ० ३०।३।

इस मंत्र में कहा है कि हे ईश्वर, न्यायकारी, दयालु ! सारे दुर्गुण हम से दूर रहें और सत्य मार्ग हमको प्राप्त हो। पहला पद निषेध, दूसरा विधि का है। इस से प्रगट होता है कि जीव की मुक्ति तथा प्रवृत्ति के दो मार्ग हैं। एक सत्य, दूसरा असत्य। मनुष्य जितना सत्य मार्ग में प्रवृत्त होता है उतना ही असत्य मार्ग से दूर रहता है।

एक कवि का वचन है—हे संसारी मनुष्यो, यदि तुम बुरे काम करते हुए यह चाहते हो कि इसका फल दुःख न हो, यह हो नहीं सकता। तुम चाहे पर्वत की कन्दरा में छिप रहो, समुद्र के निकट जा रहो, वन में भाग जाओ परन्तु उसका फल अवश्य भोगना पड़ेगा, इससे कभी भी नहीं बच सकते। यदि तुम ऐसा सोचते हो कि देखो संसार में अमुक मनुष्य बुरे ही बुरे काम करता है परन्तु सुखी है; धन भी है, स्त्री, पुत्र आदि सब ऐश्वर्य्य हैं, तो यह भूल है। यह फल तो उस के पूर्व शुभ कर्म्मों का है। जिस समय वह पूर्व जन्म के मिले हुए शुभ कर्म्मों का फल पा चुकेगा तो इन सब बुरे कर्म्मों का फल अवश्य भोगेगा।

देखो, एक पुरुष को सर्प काटता है, वह तो तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, परन्तु दूसरे को पागल कुत्ता काटता है और

सम्भव है कि एक-दो वर्ष में वह कुत्ते की न्याईं भौंकने लगे और मर जावे। इसी प्रकार कर्म्मों का फल तब ही मिलता है जब उसकी सामग्री एकत्र हो जाती है। नवयुवक, वृद्ध, बालक, माता, पिता सब ही जानते हैं कि बुरे कामों का फल बुरा होता है, परन्तु फिर इन में क्यों प्रवृत्त होते हैं? और शुभ कर्म्मों के करने में प्रवृत्त नहीं होते?

एक वेद मंत्र में बतलाया है कि ईश्वर! मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो, अशुभ वासनाओं से दूर रहे। इससे प्रगट हुआ कि यह मन द्वार का दीपक है जिस से बाहर और भीतर प्रकाश होता है। इसी प्रकार जीव और प्रकृति के मध्य में यह मन-रूपी दीपक प्रकाशित है। मन की शक्ति क्या है? यह चार प्रकार की है। एक तो 'मन' जिससे संकल्प विकल्प हों। दूसरे 'बुद्धि' जिससे मनुष्य विचार करता है। तीसरे 'अहंकार' जिससे अभि-मान होता है। चौथे 'चित्त' जिससे पूर्व का चिन्तन हो।

मन से ही मनुष्य मोक्ष पद को प्राप्त होता है।

दिल बदस्त आवुर्द हज्जे अकबर अस्त।
अज हजारां क़अबा यक़ दिल बेहतर अस्त॥

अर्थ—सब से महान् दिल है उसको काबू में ला। यदि तुम एक मन को वश में करलो तो हज़ार क़अबा से बढ़ कर है। जिसके वश में मन है, वह कामी, लोभी, मोही नहीं। कारण यह है कि मन की अनुपस्थिति में इन्द्रियां अपना कार्य नहीं कर सकतीं। बहुधा लोग कह देते हैं, भाई मेरा मन दूसरी ओर था, मैंने आपकी बात नहीं सुनी। अतः वेद ने यह प्रार्थना करने की आज्ञा दी है कि मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

यह मन सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण के चक्र में पड़ा हुआ है, इसको इन चक्रों से पृथक् करो। आप कहेंगे यह कैसे जाना जावे, कि हमारे ऊपर रजोगुण अथवा तमोगुण का प्रभाव है। जिस समय यह विचार उत्पन्न हो कि ४) अमुक धर्म्म के कार्य में देने हैं दूसरा काय रोक कर भी देदें, उस समय समझो कि सतोगुण का प्रभाव है। और जब यह विचार हो कि चलो किसी का धन हर लावें और सुख से खावें, समझो कि उस समय मन पर तमोगुण का प्रभाव है। जब ऐश्वर्य्य की चिन्ता हो समझो कि रजोगुण का राज्य है। महाराज भर्तृहरी जी कहते हैं कि सात्विकी बुद्धि वाले तो यह कहते हैं कि मेरा सुख तो इसी में है जिसमें दूसरों अथवा संसार को सुख मिले और मुझे दुःख इसी में है जिससे जिससे सारे संसार को दुःख हो। रजोगुणी कहते हैं कि हम आनन्द में रहें, दूसरों को न हम से दुःख न सुख हो। तीसरे तमोगुणी कहते हैं मुझ को सुख हो, चाहे दूसरों को दुःख ही क्यों न हो। यह तीन प्रकार के मनुष्य भर्तृहरि जी ने बताये हैं। परन्तु एक पुरुष कहता है कि इनके अतिरिक्त एक चौथा वह है जो दूसरों को दुःख देने और बिगाड़ने के लिये अपना कार्य भी बिगाड़ दे। सज्जनों! जब तक आप सतोवृत्ति न बढ़ायेंगे, उन्नति नहीं हो सकती। जब आप अपने कार्यों अथवा व्यवहारों का लेखा करते हैं, अपने उच्च कर्मचारी से भय करते हैं, बालक को लाड़ प्यार करते हैं, अपने शरीर के बनाव शृंगार तथा सौन्दर्य में समय देते हैं, कोट आदि पहने में घण्टों लगाते हैं, तो क्या आप अपने मन को पवित्र करने में थोड़ा सा समय दे कर प्रयत्न नहीं कर सकते? भाई! जितने समय में शरीर का शृंगार करते हो उसके आधे ही समय में मन शुद्ध बनाया जा सकता है। जितने धर्म हैं उनका

कारण मन है। यदि आप मन से दुष्टभाव और विरोध का काम लेंगे तो दु:ख आप के पीछे इस प्रकार चलेगा जैसे चक्र बैल के पीछे। जब आप जानते हैं कि मननशील होना ही मनुष्य कहलाता है, तो फिर धिक्कार है कि अपना मन शुद्ध नहीं करते। कोई किसी का शत्रु नहीं; मन ही शत्रु बनता है। जब मेरे मन में विश्वास नहीं तो दूसरे को मैं कैसे विश्वास करा सकता हूं। इसलिये मन में सतोगुण का प्रादुर्भाव करने की आवश्कता है। ऋषि कहते हैं कि वेद के विषय सामान्य हैं परन्तु वह आपके समझने ही से समझ में आ सकते हैं। वह दूसरों के दिखाने योग्य नहीं हैं। जैसे जो निर्बल है वह अपने धन की रक्षा नहीं कर सकता परन्तु बलवान् कर सकता है इसी प्रकार जब आजकल हमारे मस्तिष्क में विद्या के लिये आलस्य है, तो किस प्रकार विद्या तथा वेद ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है? आत्मा अवश्य उन्नति कर सकता है परन्तु पहले उस पर का आवरण हटा दो। तुम कहोगे हम में सतोगुण नहीं है। एक कपड़ा दर्ज़ी के पास ले जाओ और उसे कहो कि इसका कुछ बना दो वह पूछता है क्या बनाऊं? कमीज़ बनाऊं अथवा कोट या पाजामा। तुम कहोगे भाई मैं कोट के लिये लाया हूं। तुम कैसे कमीज़ अथवा पाजामा बना दोगे? बात यह है कि जैसे उसकी विद्या की कतरनी (कैंची) वस्त्र पर चलेगी वैसे ही क़मीज़ पाजामा आदि वस्तुएं बन जावेंगी। इसी प्रकार मनुष्य का मन है। पुत्र भी ऐसा बनाया जा सकता है कि बकरी से डर भागे और ऐसा भी बन सकता है कि सिंह को मारे। शोक है कि तुम स्वयं प्रयत्न नहीं करते और कहते हो कि पश्चिमी विद्वानों ने कैसे अद्भुत आविष्कार किये। यदि हम को ऋषि दयानन्द वेदों का संदेशा न सुनाते तो हम क्या जान सकते थे, गूंगे थे जो बात का

उत्तर भी न दे सकते थे। आज उस विद्या की कतरनी चलने से हम में वाक्-शक्ति आ गई है। जिस प्रकार हमारी ऐनक हरी है तो सब पदार्थ हरे रङ्ग के हैं, यदि लाल रंग की हो तो सब पदार्थ लाल दिखाई पड़ते हैं। बात यह है कि लाल, पीले रङ्ग दृष्टि पर आवरण का काम देते हैं, यथार्थ रङ्ग नहीं दिखाई पड़ता। परन्तु श्वेत वर्ण में आवरण नहीं होता, यथार्थ रूप दिखाई पड़ जाता है। इसी प्रकार जीव के ज्ञान के आगे तम, रज का आवरण पड़ा है; उसको दूर करो, यथार्थ तत्व प्रगट हो जावेगा।

मनुष्य का मन बन्दर की दृष्टि के समान है। आप भोजन बनाते खाते हैं, बानर आया, आपने यदि उससे दो तीन बार दृष्टि मिलाई वह भाग गया अन्यथा रोटी लेकर चम्पत हो गया। पर-स्त्री का दर्शन करके मन मलीन हुआ, आपने तत्काल इस व्यभिचार पर दृष्टि देकर इसको दूर कर दिया। इसी प्रकार विचार करने से स्वभाव पड़ जाता है और मन आपके आधीन हो जावेगा। समस्त शक्तियां आत्मा की हैं और मन से इनका प्रादुर्भाव होता है। इन्द्रियां मन से सम्बन्ध रखती हैं तब सारे कार्य्य होते हैं। जब मन इन्द्रियों के आधीन हुआ तो मानो रईस साईस और साईस रईस बन गया, राजा रंक हो गया। बनमालीदत्त से हमने मथुरा में सुना कि एक समय ऋषि दयानन्द यमुना के तट पर समाधि लगाये ईश्वर-स्मरण में मग्न थे। एक माता आई और साधु जानकर उनके चरणों में शिर निवा दिया। ऋषि की आंख खुलते ही लक्ष्य पर दृष्टि पड़ी। आप उठे और यह कह कर कि तुम यहां से चली जाओ, आप गोकुल के पर्वत पर एक मन्दिर में समाधि लगा भूखे प्यासे तीन दिन पड़े रहे। गुरु ने खोज कराई। पता लगा कि मन के इस पाप से मुकाबिला के लिये उन्होंने स्वाध्याय का

त्याग करके दुःख सहन किया ताकि फिर मन में कदापि ऐसा भाव उत्पन्न न हो। जब दीवाली आती है आप अपने गृहों को स्वच्छ करते हो, दीप जलाते हो परन्तु कभी इस शरीर-गृह के वासी को भी स्वच्छ पवित्र किया ? हाय, मकान की यह प्रतिष्ठा और उसके वासी की यह दुर्दशा ! ऐसी दशा में उन्नति क्या हो सकती है ? मित्रो, जब तक हम स्वयं न भले बनेंगे दूसरों को भला नहीं बना सकते। सारा प्रयत्न व्यर्थ होगा। देखो जब बैल थक जाता है तो रस्सी आगे पकड़ कर खींचने से नहीं चलता, पीछे से डंडा मारो, चलने लगेगा। परन्तु पशु और मनुष्य में भेद है। जो मनुष्य थका है पीछे से मारने से नहीं चलेगा परन्तु आगे से खींचने से चलेगा। हिन्दू जाति थकी है अब तुम स्वयं आगे चलाते जाओ और आगे खींचते जाओ। आँखे खोलो। विपत्ति से अधीर मत हो। अधीर होने से कष्ट बढ़ता है। जो इसका मुक़ाबिला करते हैं उनका कष्ट आधा रह जाता है। धैर्य्य द्वारा बल-वर्धन करो और प्रार्थना करो कि "तेजोऽसि तेजोमयिधेहि" हे ईश्वर, आप तेजस्वरूप हैं हमको तेज दे, बलस्वरूप हैं हम को बल दें ! जब ईश्वर पर विश्वास करके मन को पवित्र करने का प्रयत्न करोगे, तभी तेजवान् और सामर्थ्यवान् बनकर जीवन सफल करोगे।

धर्म पर आरूढ़ रहो

ओ३म् विश्वानिदेव सवितर्दुरितानिपरासुव ।
यद्भद्रन्तन्न आसुव ।

इस वेद मंत्र में प्रार्थना की गई है कि परमात्मा आप हमें दुर्गुणों से पृथक् करके शुभ गुणों में लगाइये । परन्तु केवल प्रार्थना करने से हम बुरे कामों से नहीं हट सकते जब तक कोई साधन न होगा । दूर क्यों जाते हो, अपने शरीर से ही इसका उदाहरण लेलो । हमारे मुख में तीन प्रकार के दांत हैं । एक काटने के, दूसरे कुतरने के और तीसरे चबाने के, यदि इन तीनों में से एक प्रकार के न हों तो भोजन अच्छी प्रकार पच नहीं सकता । प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति के लिये साधनों की आवश्यकता है । दुःख और सुख दोनों मनुष्य के अन्तरात्मा में विद्यमान् हैं । शास्त्रों ने बतलाया है जहां प्रेम है वहां सुख है, प्रेम, श्रद्धा और विश्वास में है, विश्वास सत्य में है, सत्य विद्या से ग्रहण किया जाता है, विद्या बिना तप के प्राप्त नहीं हो सकती और तप बिना ब्रह्मचर्य के नहीं होता । यदि आप इन छः दरजों को पार कर जाएं तो सुख पा सकेंगे ।

संसार सत्य पर स्थिर है—श्रद्धा सत्य के आश्रय पर खड़ी है । जिस श्रद्धा में सत्य नहीं वह फलदायक नहीं हो सकती, और न ही वह सत्य लाभकारी हो सकता है जिसमें श्रद्धा न हो ।

पौराणिकों में श्रद्धा बहुत है परन्तु सत्य नहीं, प्रत्युत आर्य-समाजियों में सत्य है किन्तु श्रद्धा नहीं। परिणाम यह है कि दोनों को सुख नहीं। नकल करने वाले भांडों का कोई विश्वास नहीं करता; यदि उसको वास्तव में पेट में पीड़ा होती हो तो लोग यही समझते हैं कि हंसी कर रहा है। हमारे सारे कार्य असत्य पर ही चल रहे हैं जिसका परिणाम यह है कि परस्पर विश्वास नहीं रहा। यदि कोई दुकान वाला ठीक दाम भी बतलाता है तो विश्वास नहीं आता। परन्तु टिकट मोल लेते समय कोई अविश्वास नहीं करता क्योंकि वहां सत्य का विश्वास है। सत्य की परीक्षा विद्या से की गई है। जहाँ अविद्या है, वहां अन्धकार है। अन्धकार बिना प्रकाश के दूर न होगा।

प्राकृत अंधकार को दूर करने के लिये प्राकृत प्रकाश की आवश्यकता है और आत्मिक अंधकार के नाश के लिये विद्या की आवश्यकता है। जो जाति विद्या से विमुख हो जाती है उसकी जितनी भी दुर्दशा हो थोड़ी है। जाति में से सुख का अनुभव उड़ जाता है। काशी के विद्वान् धर्म की दुर्दशा देखकर चुप बैठ रहे परन्तु स्वामी दयानन्द का दिल फड़क उठा। वह उस अत्याचार को जो धर्म के नाम पर हो रहा था सहन न कर सका। सत्य विद्या का पति है। उसकी दो संतान हैं, एक पुरुषार्थ दूसरा विज्ञान। ऋषि दयानन्द के भीतर जहां विद्या थी वहां सत्य धर्म भी था। उन्होंने विज्ञान से अनुसंधान किया और पुरुषार्थ से उसको समस्त संसार में फैला दिया। विद्या पंडितों के पास थी परन्तु पुरुषार्थ के बिना निरर्थक हो रही थी। यदि आप भी विद्या को बलवती बनाना चाहते हो तो उसके साथ सदाचार का अवलम्बन करो। वह विद्वान्

किसी काम का नहीं जो दुराचार में लिप्त हुआ है। विद्या दूसरों को प्रकाशमान् कर सकती है। बुझा हुआ लैंप कभी किसी को प्रकाश नहीं दे सकता। गाड़ियां इंजन के साथ ही चल सकती हैं, इंजन से पृथक् होकर नहीं। ऋषि दयानन्द के उपदेशों से लाभ उपलब्ध करके हम कुछ काम करने के योग्य हो गये हैं। ऋषि से बढ़कर काम करना तो कहां? हम सबने मिलकर इस समय तक इतना काम नहीं किया जितना अकेला ऋषि कर गया है। इसका कारण स्पष्ट है कि हममें इतना उच्च सदाचार और तप नहीं जितना कि ऋषियों में था। देखा जाता है कि यदि मूर्ख पुरुष पाप करे तो इतनी हानि नहीं होती जितना कि एक पठित पुरुष के पाप से होती है। इसीलिये शास्त्र ने विद्या के साथ सदाचार की शर्त लगादी है। हमारे पूर्वजों ने धन को हाथ की मैल कहा है। यद्यपि स्वास्थ्य को धन की कुछ परवाह नहीं परन्तु स्वास्थ्य से भी अधिक सदाचार का ध्यान रखना चाहिये। परंतु आज शोक से देखा जाता है कि सदाचार की अपेक्षा धन का अधिक मान है। जब तक आप सदाचार की अपेक्षा धन को निकृष्ट न समझेंगे तुम्हारा कुछ न बनेगा। यही सीधी लाईन है जिस पर चलकर आप सुख पा सकते हैं।

आचार की रक्षा किस प्रकार हो?—अब प्रश्न यह है कि सदाचार आवे कैसे? आचार अधिकतर युवावस्था में भ्रष्ट होता है। जिस प्रकार हलवाई का दूध साधारणतया पहिले ही उबाल में कढ़ाई से बाहर होता है, इसी प्रकार वीर्य का नाश भी बालकपन में होता है। जिस हलवाई ने पहिले उबाल में दूध को गिरने से बचा लिया वह फिर अंत तक हानिरहित हो जाता है। इसी प्रकार

जो माता पिता २५ वर्ष तक अपने पुत्रों के ब्रह्मचर्य की रक्षा करते हैं, उनके पुत्र आयु-पर्यन्त सदाचारी रहते हैं। यही ऋषि ने तुम्हारे सामने अपने जीवन का आदर्श रख दिया है। अब यदि व्यर्थ बातों को नहीं छोड़ोगे तो मर जाओगे। तुमने आर्यसमाज में आकर संसार के उद्धार का बीड़ा उठाया है। इसलिये तुम जिन विचारों को संसार में फैलाना चाहते हो पहिले स्वयम् उनका पालन करो।

जीवन यात्रा

सफलता और असफलता में भेद—यदि आप गूढ़ दृष्टि से देखेंगे तो संसार में बिना सफलता के मनुष्यों के लिये दुःख होता है और जो सफलता प्राप्त कर लेते हैं उनको सुख होता है। सफलता को सामर्थ्य और असफलता को असमर्थ भी कहते हैं। यदि इस बात को जान लिया कि दुःख क्या है और उस बात का त्याग कर दिया तो सफलता को प्राप्त हो गये। यदि जानकर भी न छोड़ा तो असमर्थ रहकर परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गये। दुःख के कारण को पहले समझना और फिर उसको परित्याग करना भी सफलता ही है। जिस समय कोई पुरुष अपनी असफलता को अनुभव कर रुदन करता है वही उसके लिये सफलता की पहली सीढ़ी है। इस पर मैं दो उदाहरण देता हूँ। एक धनवान् ने दो मल्लों (पहलवानों) के लिये ५००) का पारितोषक नियत किया कि जो जीतेगा वही इसको ग्रहण करेगा। अब दोनों पहलवान मुका-बिला की तैयारी करते हैं। दोनों की यही इच्छा होती है कि एक दूसरे को गिरा लें। परन्तु जीतना एक ने ही है। लोगों के सन्मुख उनकी कुश्ती होती है। दर्शकों के देखते २ एक पहलवान दूसरे को गिरा लेता है। उसके मुख की ओर देखो और जो गिरा है उसकी ओर भी ध्यान से देखो। सफल के मुख पर अखाड़े की मट्टी बहुत अच्छी लगती है, उसकी छवि प्रसन्नता से दुगनी हो रही है। मुख की कांति प्रसन्नता-पूर्ण दीख पड़ती है। परन्तु जो गिरा है उसके दुःख तथा खेद का कोई ठिकाना नहीं, असफलता ने उसको

इतना शोकमय बना दिया है कि उससे अब उठा भी नहीं जाता। यद्यपि यह कोई बड़ी बात न थी, वह दूसरी बार जीत भी सकता है। यह एक शारीरिक सफलता का उदाहरण है, दूसरा उदाहरण विद्या की सफलता को लेलें। विद्यार्थी परीक्षा देते हैं, एक उत्तीर्ण दूसरा अनुत्तीर्ण हो जाता है। अब एक का मुख सफलता के कारण प्रफुल्लित और सुन्दर दृष्टिगोचर हो रहा है और उससे जो भी मिलता है अपनी सफलता का वर्णन करता है, परन्तु दूसरा बहुत उदास है और वह किसी को बताता भी नहीं कि पास नहीं हुआ, क्यों ? इसलिये कि यह अपने इरादे में चूक गया है।

संसार के अन्दर सफलता एक बड़ा मूल्यवान् पदार्थ है। यदि संसार को एक अखाड़ा मान लें तो हम इस अखाड़े के पहलवान हैं। हमें इसमें सफलता प्राप्त करने का यत्न करना चाहिये। जिस प्रकार अखाड़े के पहलवान् और महाविद्यालय के विद्यार्थी का कोई विशेष लक्ष्य है, इसी प्रकार संसार में हम सबका कोई विशेष उद्देश्य है जिसके लिये हमें मनुष्य-जन्म प्राप्त हुआ है। परन्तु शोक कि हम यथार्थ उद्देश्य को नहीं समझते। हमारी दशा तो ठीक उस पुरुष के समान है जो बड़ी तेज़ी से भागा जा रहा हो, लोग उसे पूछते हैं कि कहां जा रहे हो ? वह उत्तर देता है कि मुझे कुछ पता नहीं। आप लोग भी इस पुरुष पर हसेंगे। परन्तु आप अपनी दशा पर विचार करें कि आप की क्या गति है ?

शास्त्र बतलाते हैं कि इरादा जब तक क्रिया के साथ न हो उसका फल नहीं हो सकता। शारीरिक में लिखा है कि भोजन खाओ धीरे २, परन्तु उसका स्वाद अच्छी प्रकार लो। परन्तु बाबू लोगों को स्वाद कहां ? साढ़े नौ बज चुके हैं, कचहरी का समय

हो चुका है, जल्दी २ ग्रास अंदर फेंकते जाते हैं, इसका परिणाम यह होता है कि भोजन का पूरा लाभ नहीं हो सकता। तो मैंने आप को बतलाया कि प्रत्येक क्रिया के सन्मुख उसका लक्ष्य होना चाहिये। प्रश्न स्पष्ट है—

जीवन का उद्देश्य क्या है?—हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है? हम किस प्रकार उसमें सफल हो सकते हैं। सफलता और असफलता प्रत्येक संसारिक कार्यों के समान यहां भी विद्यमान हैं। मृत्यु का भय हर समय लगा रहता है। न्यायशास्त्र नें एक उदाहरण दिया है कि बिल्ली को देखकर कबूतर की आंखें बन्द कर लेने से बिल्ली का भय दूर नहीं हो सकता। ठीक इसी प्रकार जीवनके उद्देश्य से अनभिज्ञ रहने से मृत्यु टल नहीं सकती। निश्चय रूप से यह जानते हुए कि आपने एक दिन नहीं रहना, आप उद्देश्य से असावधान हैं, नहीं सोचते कि हम मृत्यु के डर से किस प्रकार बच सकते हैं? क्या मृत्यु से बचने का उपाय डाक्टरों वैद्यों के पास है? यदि डाक्टरों अथवा वैद्यों के पास मृत्यु की औषधि होती तो बड़े २ राजा महाराजा न मरते। तो क्या फिर मृत्यु का कोई उपाय नहीं? उपाय अवश्य है। महात्मा बुद्ध के सम्बन्ध में एक दृष्टान्त दिया जाता है—

एक माता का पुत्र मर गया। उसको महात्मा बुद्ध का पता मिला। वह अपने पुत्र के मृतक शरीर को लेकर महात्मा बुद्ध के पास आई और कहा इसे जीवित कर दो। महात्मा ने उत्तर दिया कि मैं इसे जीवन प्रदान कर दूँगा यदि आप थोड़ी सी मट्टी उस घर से ले आवें जिसका कोई न मरा हो। वह स्त्री सारे नगर में फिरी परन्तु उसे कोई घर ऐसा न मिला जिसका कोई न मरा हो।

इस पर उसे शांति आ गई कि प्रत्येक के शिर पर काल का शस्त्र लटक रहा है अत: कोई मनुष्य मृत्यु से नहीं बच सकता। निर्बल को बलवान् तो बचा सकता है परन्तु बलहीन नहीं। परमात्मा सबसे बलवान् है मृत्यु पर भी उसका पूर्ण अधिकार है इसलिये उसकी शरण में जाने से हम मृत्यु से बच सकते हैं।

जो परमात्मा की सत्ता को नहीं समझते उनको मृत्यु नहीं छोड़ती। जब तक हमने मृत्यु की व्यवस्था नहीं समझी हम मृत्यु के भय से रोते हैं, परन्तु जब हमने जीवन मरण की समस्या को समझ लिया, सारे भय दूर हो जाते हैं। जिस परमात्मा के शासन में जल, पृथ्वी, आकाश अपनी मर्यादा को नहीं छोड़ते उसकी शरण में जाने और उससे लौ लगाने से मृत्यु दुखदाई नहीं रहती।

उपनिषदों में एक दृष्टान्त आया है कि एक राजा को रात्रि में स्वप्न आया कि वह एक शृगाल के भय से मैदान में भाग रहा था। दौड़ते २ उसको एक वृक्ष मिल गया, वह उस पर चढ़ गया और उसे शान्ति आ गई। परन्तु नीचे दृष्टि की तो क्या देखता है कि सर्प मुँह खोले बैठा है। दूसरी ओर काले और श्वेत दो चूहे वृक्ष की जड़ को खोखला कर रहे हैं। वृक्ष के ऊपर मधु का छत्ता है। ऊपर देख रहा था कि मधु की एक बूँद उसके मुँह में पड़ गई, सारे दुःख भूल गया। मधु का स्वाद ले ही रहा था कि इतने में उसकी आंख खुल गई। अब वह सोचता है कि यह क्या स्वप्न है ? उपनिषद्कार इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि वह मैदान जिसमें राजा भाग रहा था, यह संसार है। वह शृगाल जिसके भय से भाग रहा था "मृत्यु" है। वृक्ष मनुष्य की आयु है। सर्प मृत्यु की चिन्ता। काले और श्वेत चूहे रात दिन हैं जो मनुष्य की

आयु को काट रहे हैं। जो दिन व्यतीत होता है वह आयु को न्यून करता है। मक्खियां शरीर के रोग हैं। इतने कष्ट होते हुए भी मनुष्य इनको भूल जाता है, किस लिये ? मधु की बिन्दुरूप इन्द्रियों के विषय से।

भर्तृहरिजी ने कहा है कि दिन और रात्रि के चक्कर में आयु व्यतीत हो रही है। सामने देख रहा है कि अमुक वृद्ध हो रहा है, अमुक का पुत्र मर गया, परन्तु इन दशाओं को देखकर भी भय-भीत नहीं होता, इसका कारण केवल यह है कि मनुष्य संसार के चक्कर में आया हुआ है। जिस प्रकार एक मदिरा पीने वाला मान-अपमान का तनिक भी विचार नहीं करता, इसी प्रकार संसार के मोहरूपी मद्य के नशे में मनुष्य मृत्यु की पर्वाह नहीं करता।

छान्दोग्य उपनिषद् में आया है कि आत्मा जन्म और मरण के बन्धन से परे है। जन्म और मृत्यु तो शरीर का है। इसलिये कहा है कि शरीर के आरोग्य होते हुए ही उसका स्मरण करो ताकि अन्त अच्छा हो और अन्त समय में उसका स्मरण हो। जो लोग आयु-भर सांसारिक व्यवहारों में लिप्त रहते हैं उनको अन्त में भी वही स्मरण आते हैं इसलिये उनका अन्त समय बहुत बुरी तरह व्यतीत होता है। महात्मा कृष्णचन्द्र ने कहा है कि प्रभु का स्मरण अन्त समय अवश्य होना चाहिये। एक युवक जो कालिज में पढ़ता है, डाक्टर उसकी दाढ़ निकालने लगे और उस समय उसको कहे कि अब कालिज की ओर ध्यान कर, पर पीड़ा से क्लेशित विद्यार्थी को कालिज का स्मरण नहीं हो सकता। ऋषि दयानन्द जिसके सारे शरीर पर छाले पड़ चुके हैं, प्राणान्त होने में १० मिनट की देर है, उस समय भी उनके मुख से "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो !" यही निकलता है।

यह है अभ्यास की शक्ति। इसी प्रकार यदि प्रभु का अभ्यास करोगे तो मृत्यु के समय वही स्मरण होगा और उस समय मृत्यु का भय न रहेगा। आप चील को प्रतिदिन देखते हैं कि जब उड़ती है तो उसके पंख नहीं हिलते क्योंकि उसको अभ्यास हो चुका है। मुरग़ाबी जल में रहती है परन्तु जल उसके उड़ने में बाधक नहीं होता, परन्तु एक काग यदि जल में डुबकी लगाये तो उसके लिये उड़ना कठिन हो जाता है। इसी तरह जैसा आयु-पर्य्यन्त आप ने अभ्यास किया है वैसा ही चित्र मृत्यु के समय आपके सामने प्रस्तुत हो जावेगा। यदि आपने फ़ोटो खिचवाने के समय आंखें बन्द कर ली हैं तो चित्र में भी आंखें बन्द रहेंगी। जैसे कर्म्म किये हैं वैसा ही चित्र अन्त समय खिच जावेगा। उस समय न किसी वकील की आवश्यकता होगी, न बैरिस्टर की। अपराधी स्वयमेव स्वीकार कर लेता है कि वस्तुतः मैंने अमुक खोटे कार्य्य किये थे। मैंने बहुतेरे लोगों से उन खोटे कर्म्मों को छुपाया परन्तु शोक कि आज वह सब प्रकट हो गये और जिनके लिये मैंने यह पाप किये थे वे भी आज मेरा साथ नहीं देते। इसीलिये शास्त्र कहते हैं कि माता, पिता, स्त्री, पुत्र सब की सहायता करो, परन्तु धर्म्म के अनुसार। किसी के लिये अधर्म्म न करो। यदि अधर्म्म के साथ उनकी सहायता करोगे तो तुम्हें कष्ट होगा। परन्तु शोक हम परमेश्वर से भय नहीं करते प्रत्युत मनुष्यों से भयभीत हैं। जब कभी कोई बुरा काम करने लगते हैं तो चहुँ ओर देखते हैं कि कोई मनुष्य तो नहीं देखता। हम दो आंखों वाले से भयभीत होते हैं परन्तु नहीं जानते कि वह परमात्मा जिसकी व्यवस्था शास्त्रों ने यह की है कि सब ओर उसकी चक्षु है वह हमें सब ओर से देख रहा है। एक विचारशील पुरुष ने कहा है कि

जितने पाप के कार्य्य हैं वह सब अंधेरे में होते हैं, प्रकाश में नहीं। प्रकाश में पाप का क्या काम ? आत्मा में परमात्मा का प्रकाश है। पाप और पुण्य की अवस्था हम दूसरों से छिपा सकते हैं परन्तु अपने से नहीं छिप सकती। आप जानते हैं कि आपने क्या २ कर्म्म किये हैं, उसी प्रकार मैं भी जानता हूँ। परमात्मा ही सब के मन की जानने वाले हैं इसलिये उपनिषद् कहते हैं—

श्रोत्रस्य श्रोत्रम् मनसो मनः—वह चक्षु का चक्षु, कानों का कान, और मनों का मन है। आपके मन में जो बात है, भगवान् उसको जानते हैं। इसी उपनिषद् ने कहा है—

यो भूतश्च भव्यश्च सर्वदा तिष्ठति

वह परमात्मा कैसा है ? परमात्मा भूत और भविष्यत के चक्कर में नहीं आता। उसके लिये सब एकरस वर्त्तमान है। वर्त्तमान क्या है ? कोई नहीं बतला सकता। भूत और भविष्यत् में जिसने भेद किया है वही वर्त्तमान है। वर्त्तमान प्रतीत नहीं होता परन्तु सदा बना रहता है। इसी प्रकार परमात्मा प्रतीत नहीं होता परन्तु तुम्हारे पास रहता है, तो फिर उससे असावधान होकर किस प्रकार सुख पा सकते हो ? लोग कहते हैं कि योरुप के नास्तिक किस प्रकार सुख पा रहे हैं ? मैं कहता हूँ कि यह ठीक नहीं है। जिस प्रकार आप उन्हें नास्तिक समझ रहे हैं, वे नास्तिक नहीं हैं ? और जो वास्तव में नास्तिक हैं वे सुख नहीं पा रहे। उनके सुख दुख का अनुमान मैं और आप नहीं कर सकते। शास्त्र ने कहा है कि कृतघ्नता से अधिक कोई पाप नहीं। किसी के उपकार को न जानना सब मतों में पाप माना गया है। परमात्मा ने हम पर क्या कम उपकार किये हैं ? जिन वस्तुओं का जीवन से

सम्बन्ध है वे उसने सब के लिये प्रदान की हैं। वायु के बिना जीवन एक घण्टा नहीं रह सकता; वायु जैसी अमूल्य वस्तु उसने सब के लिये मुफ़्त दी है। प्रकाश न हो तो संसार में अंधकार फैल जावे। प्रकाश के दाम का अंदाज़ा कौन कर सकता है, परन्तु परमात्मा ने प्रकाश भी अधम से अधम मनुष्य के लिये प्रदान किया है।

गृहस्थ का बोझ हम आयुपर्यन्त उठाते हैं। किन्तु वेदों ने तो नियम बांध रखा है कि २५ वर्ष ब्रह्मचर्य्य को समाप्त करके फिर २५ वर्ष गृहस्थ और उसके पश्चात् वानप्रस्थ और फिर सन्यास। परन्तु हम २०० वर्ष के हो जावें तो भी हमारी तृष्णा गृहस्थ से पूर्ण नहीं होती। गृहस्थ का बोझ तो मरते समय तक नहीं छोड़ते और फिर कहते हैं कि प्रचार नहीं होता। भला प्रचार का काम तो स्वतन्त्र संन्यासियों का है परन्तु अब करने लगे मैं और आप जिनको धर्म्म की अपेक्षा व्यक्तियों का अधिक ध्यान है। यही कारण है कि सचाई को हम लोग निर्भय होकर नहीं प्रकट करते। धर्म्म के प्रचार के लिये सब से अधिक साधन 'सत्य' है। आपको विदित है कि महाराजा अशोक ने किस प्रकार बुद्ध धर्म्म को ग्रहण किया था?

एक बार मैं छत्तीसगढ़ गया। वहां के राजा भी कबीर-दासी थे। मैंने मालूम किया कि यहां के राजा का इस मत में कैसे प्रवेश हो गया। उत्तर मिला कि एक बार एक कबीरदासी ने एक झूठी साक्षी दे दी। उसके प्रायश्चित में सब कबीर-पन्थी नदी के तट पर जाकर भूखे रहे। इस तप का राजा पर गहरा प्रभाव पड़ा और वह भी कबीर पन्थ में सम्मिलित हो गया।

राजा अशोक एक समय बन में मृगया के लिये गये। उसी बन में बुद्धभिक्षु रोगी पशुओं की मरहम पट्टी कर रहे थे। राजा

को आते देख कर सब पशु खिलखिला उठे। इन पशुओं की यह अवस्था देखकर राजा पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उसने बुद्ध धर्म्म को ग्रहण कर लिया। लंका में बुद्धमत्त के प्रचार का विचार हुआ। प्रश्न उठा कि कौन जावे? सब धार्मिक पुरुषों ने प्रस्ताव किया कि राजा का पुत्र जावे तब बहुत प्रचार होगा। वह तैयार हो जाता है। थोड़ी दूर जाकर वह लौट आया। लोग समझते हैं कि महेन्द्र भयभीत होकर वापिस आ गया है परन्तु वह उत्तर देता है कि मेरे मन में तो यह विचार उत्पन्न हुआ है कि मैं तो पुरुषों में प्रचार करूँगा परन्तु स्त्रियों में कौन करेगा? इसलिये वह अपनी स्त्री को संन्यासिनी बना कर अपने संग ले जाता है।

इसलिये संसार में यदि सफलता चाहते हो तो दो वस्तुओं को सदा ध्यान में रक्खो, एक तो परमात्मा, और दूसरे मौत। मृत्यु परमात्मा के अधीन है। मृत्यु को हर समय स्मरण रखने से पाप नहीं होता। क्या आप नित्यप्रति नहीं देखते कि जिस समय शमशान भूमि में जाते हैं, हमारे विचार मृत्यु और परमात्मा की ओर लग जाते हैं और उस समय पाप का लेश भी मन में नहीं रहता। इसी प्रकार जो मनुष्य मृत्यु को हर समय ध्यान में रखते हैं पाप उनके निकट नहीं फटकता।

धर्म के तीन आवश्यक अंग

उपनिषदों में एक वाक्य आया है 'त्रयो धर्म स्कन्धाः' जिसका तात्पर्य यह है कि धर्म के तीन स्तम्भ हैं, जिनके ऊपर धर्म की स्थिति है—(१) यज्ञ (२) पठन-पाठन और (३) दान।

यज्ञ—जो कर्म मनुष्य को परमेश्वर तक मिलाता है उसको यज्ञ कहते हैं। यज्ञ वही है जिससे यज्ञ करने वाले और सर्वसाधारण को समान लाभ हो। जैसे कि आपने गृह में कूप लगाया है और दूसरे को पानी नहीं भरने देते इसका फल केवल आपको है। दूसरी ओर एक कूप ऐसे स्थान पर लगाया जहां पर लोगों को कूप न होने से कष्ट होता था, उससे आपको तो विशेष लाभ नहीं है, परन्तु सर्वसाधारण को है। आज इस प्रकार के सर्वहित के काम करने वाले बहुत कम हैं। जब संसार में इन पुरुषों की संख्या बढ़ती है तो लोग सुख के मार्ग पर चलते हैं अन्यथा दूसरी दशा में दुःख के मार्ग पर चलते हैं। एक रागी किसी कमिश्नर साहिब के पास गया और स्टेशन के विषय में कविता की। साहिब सुन कर बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि परसों पारितोषिक देंगे। जब वह परसों गया और इनाम के लिये याचना की तो साहिब ने कहा कि इनाम क्यों दें? एक प्रकार के स्वर से तुमने हमें प्रसन्न किया, हमने भी परसों की प्रतिज्ञा देकर आप को प्रसन्न कर दिया, कोई सर्वसाधारण के लाभ की बात बतलाओ तो इनाम मिलेगा।

दूसरा अङ्ग—अध्ययन अर्थात् विद्या का पढ़ना और

पढ़ाना। इस क्रम में माताओं और बहनों को तो पृथक कर दिया गया है, परन्तु मैना और तोते को पिंजरे में बन्द करके पढ़ाया। क्या कन्याओं को बिना पढ़ाए रख कर सुख पा सकोगे ? गुड़ियों की रीति इसीलिए प्रचलित हुई कि माताओं ने एक प्रकार नाटक करके दिखला दिया कि जिनका विवाह करते हो वह तो ऐसो निर्जीव हैं जैसे कि गुड़ियां। वेद में तो कहा है—

मातृमान् पितृमान् आचार्य्यमान पुरुषो वेद

कि माता बालक की असली गुरु है। माता गोद में खिलाती हुई बच्चे के लिये इतनी विद्या उपार्जन करती है जितनी कि पिता वर्ष में भी नहीं कर सकता। जितना माता और पिता का प्रभाव अपनी सन्तान पर पड़ता है उतना आचार्य्य का कभी नहीं हो सकता। माता पिता के विचारों का परिणाम बच्चा होता है।

दो पुरुष परस्पर गाली निकालते हैं परन्तु बुरे शब्दों को सुन कर सबका आनन्द जाता रहता है। जब दो पुरुषों के गाली देने से सुनने वालों के अन्तःकरण मलीन होते हैं तो भला माता के गर्भ में पिता के क्रोध और लड़ाई से क्यों न बच्चे पर बुरा प्रभाव पड़ता होगा, और क्यों न उसकी बुद्धि भ्रष्ट होगी ? जब तक माताओं की शिक्षा न होगी सन्तान मूर्ख रहेगी और यह सारे काम अधूरे और अपूर्ण पड़े रहेंगे।

अरस्तु का कथन है कि यदि किसी देश की दशा को मालूम करना चाहो तो धन, सड़कों, स्कूलों, उद्यानों, मकानों, न्यायालयों आदि के हालात पूछने से मालूम नहीं होंगे, परन्तु उस देश की स्त्रियों की अवस्था पूछने से वास्तविक दशा प्रगट हो सकती है कि वहां के लोग विद्वान् सदाचारी हैं, अथवा भीरू, कायर और

गिरे हुए प्रतीत होते हैं। हमने अपनी भूल से स्त्रियों को विद्या से वञ्चित रक्खा और उस का फल भोग रहे हैं।

तीसरा अङ्ग—दान—मनुष्यके स्वभाव में है कि दान देता रहे। एक स्थान पर ५० रोटियां हैं और २५ पुरुष हैं यदि बांटी जावेंगी तो दो रोटी प्रति पुरुष को मिलेंगी। परन्तु १० पुरुष यदि ५-५ के हिसाब से ले लेवें, तो शेष भूखे रह जावेंगे। इसी प्रकार भोजन तथा वस्त्रों की दशा है। और यही हमारे अन्याय का फल हो रहा है।

दान की प्रणाली में बड़ी गड़बड़ है। हम दान करते हैं, परन्तु हमारी हानि होती है। श्रीकृष्णचन्द्रजी ने कहा है कि दान, देश, काल और पात्र की परीक्षा करके दो। धन वालो! अगर दान करते हो तो पहले देश की परीक्षा करो। यदि जल का कष्ट होवे तो तड़ाग, कूप, बावली लगाकर दूर करो। यदि रोग से देश पीड़ित है तो औषधालय खोल कर अपने कर्त्तव्य का पालन करो। और यदि देश में विद्या की न्यूनता है तो विद्यालय और पाठशालायें खोलो। परन्तु सत्य कहा है कि 'विनाशकाले विपरीत बुद्धि' हमने दान का उल्टा ही अर्थ समझा है हमने यही मान लिया है कि गया, हरद्वार आदि तीर्थों पर पंडों को दान दे दो। काल का आशय यह था कि शीत, उष्ण तथा ऋतु अनुसार दान करो। दुर्भिक्ष आदि में निर्धन और अनाथों की सहायता करो। अब उसके स्थान में एकादशी पूर्णमाशी पर दान किया जाता है! एकादशी का आशय तो यह था कि प्रतिदिन खाने वाला एक दिन न खावे तो आरोग्यता हो जाती है। भारतवर्ष में यह हाल है कि अजीर्ण है तो वैद्य के पास जाते हैं चूर्ण लेते हैं। पाचन-शक्ति को ठीक करने के लिये निराहार नहीं रहते, हैज़ा और

अजीर्ण खरीद लेते हैं। इसलिये लाभ के स्थान में हानि हो रही है।

पात्र के अर्थ अधिकारी के हैं। जिनके माता और पिता जीवित न रहें वे अनाथ हो जाते हैं उनका बोझ जनता पर है। जो विधवायें हो जावें उनकी रक्षा करें। विद्यार्थियों और ब्रह्मचारियों को विद्यादान करें। भारतवासी इसी प्रकार मनुष्य धर्म्म का पालन किया करते थे। परन्तु अब गया के पण्डे, मथुरा और हरिद्वार के चौबे १७५००० के लगभग हैं। इनका काम है भंग का का पीना खाना और गंगा के तट पर जाकर शौच होना अथवा लठबाज़ी करना और लड़ना। इस रूप में दान लेने वाला और दानी दोनों ही पापी हैं। प्रश्न यह है कि देने वाला क्यों पापी है ? लोग बन्दूकों से मृग मारते हैं, यदि मैं किसी को बन्दूक दूं और गोली न दूं तो वह बन्दूक नहीं चल सकती। मृग तब ही मरेगा जब बारूद भरा हो और गोली भी हो। बारूद का काम तो हम ने धन से लिया, गोली का काम बुरे काम से उन्होंने किया। भला यदि सारे संन्यासी आदि विद्वान् हो तो भारतवर्ष की यह दुर्दशा होती ? इस देश में ५२ लाख के लगभग साधु हैं। यदि दान की प्रणाली ठीक हो जावे तो एक ही वर्ष में भारतवर्ष की अवस्था का परिवर्त्तन हो कर सारे काम ठीक हो जावें। अम्बाला में मेरे पांव में ठोकर लगी, अब तक पीड़ा है और नंगे पांव कई दिनों से चलना पड़ता है। यह अपने विपरीत कामों का ही तो परिणाम है। आंखें खोल कर संभल कर चलता तो आज यह दशा न होती। सज्जनो ! यही अवस्था दान की है। धन कमा कर उलटी ओर लगाया है, और भुक्त रहे हैं। अब तो

पंडों के लिये ही २५) तोला का इतर गाज़ीपुर वाला काम आता है, गृहस्थी थोड़ा मोल ले सकते हैं ? यदि सोच विचार कर दान करते तो दान लेने वालों को भी होश होती कि किस प्रकार से पुरुष भूषण आदि बेचकर भी और ऋण उठा कर भी दान करते हैं। वह अपनी सन्तान को पढ़ाते और धर्म्म उपदेश करते, उन को धन की चिन्ता न रहती। पढ़ना धन कमाने के लिये है और जब दान मिल जाता है तो फिर इसीलिये तो पढ़ाते नहीं। परिणाम यह है कि अविद्या और विषयों में पड़े रहते हैं। नीतिकार कहते हैं कि मनुष्यों! धन दान दो तो बुद्धिमानों और विद्वानों के लिये। इस पर एक दृष्टान्त देता हूं। ज्येष्ठ और आषाढ़ मास में तालाबों और समुद्रों से जल उड़ता है। सूर्य्य की किरणों से तालाब हौज़, नदियों का जल न्यून रह जाता है। ऊपर जाकर वायु के संबन्ध से जल बनकर नीचे गिरता है। पर्वतों की हिम को पिघलया तराइयों को ठंडा किया, वन उपवन को हरा भरा कर दिया नदियों को बढ़ाया, गर्मी बुझाई और फिर उन्हीं नदियां तालाबों और समुद्रों को भी भर दिया। अर्थात् जहां से पानी उड़ाकर न्यून किया था उनको भी भरपूर्ण कर दिया। इसी प्रकार से शास्त्र की आज्ञा है कि दान करो। एक समय का वर्णन है कि एक माली ने गुलाब के पुष्प उद्यान में लगाये हुए थे, बुलबुल उनको नोचती थी। माली ने जाल बिछाया जिसमें बुलबुल फंस गई, माली ने उसे पिंजरे में बन्द करके लटका दिया। बुलबुल इस प्रकार कहने लगी—एक वन में चार पुरुष जा रहे थे कि इतने में एक तीतर बोल उठा। उनमें से एक जो पहलवान था वह तीतर के शब्द सुनकर बोला कि यह कहता है—"दंड, कुश्ती और कसरत"। दूसरा मुसलमान था उसने कहा, यह कहता है—"सुभान

तेगी कुदरत" । तीसरा जो वैश्य था उसने कहा, यह कहता है–"सोंठ अजवायन अदरक।" चौथा जो वैरागी था उसने कहा यह कहता है–"सीताराम व दशरथ।" प्रत्येक ने अपने २ विचार अनुसार तीतर के शब्द की व्याख्या की। इससे माली के मन में यह बात जच गई उसने समझा कि बुलबुल उसे कह रही है कि ए मनुष्य! तुझको तो ईश्वर ने मनुष्य बनाया है, मैं भूल कर सकती हूं अतः क्षमा मांगती हूं, क्षमा करना मनुष्य का धर्म्म है, तू मेरी स्वतन्त्रता को क्यों रोकता है? माली ने पिंजरे से उसको छोड़ दिया। बुलबुल वृक्ष पर जा बैठी और बोलने लगी कि माली! परमात्मा दयावान् है और करुणानिधान है इसलिये जिस वृक्ष की शाखा पर मैं बैठी हूं, तू उसको खोद, वहां स्वर्ण मुद्रिका का घड़ा दवाया हुआ है। जब माली ने खोदा, उसमें से स्वर्ण मुद्रिका निकलीं, वह उनको देखकर शोकातुर हो बैठ गया। सन्देह और चिन्ता उसको इसलिये हुई कि सामने की वस्तु अर्थात् जाल को तो बुलबुल ने नहीं देखा परन्तु आश्चर्य है कि भूमि के अंदर दबी हुई वस्तु को देख लिया है। बुलबुल ने कहा कि जब मृत्यु आती है तो सामने पड़ी वस्तु दृष्टिगोचर नहीं होती।

अतः अब आप लोगों का कर्तव्य है कि स्वयमेव सावधान होकर यज्ञ और दान की महिमा को समझें, इनका ठीक और ज्ञान-पूर्वक सेवन करें। धर्म्म स्वयमेव फल देगा, सब संसार में सुख होगा, और आपकी कीर्ति होगी। परमात्मा आप लोगों को बल दें!

स्वाध्याय ही जीवन है

स्वाध्याय से मनुष्य के जीवन में विचित्र परिणाम होता है। मनुष्य जीवन के उद्देश्य की पूर्ति का मुख्य साधन यही है। बिना स्वाध्याय के कोई भी पुरुष अपने हिताहित की विवेचना ठीक ठीक नहीं कर सकता। जिन पुरुषों की ख्याति आज तक संसार में विख्यात है व जिनका नाम बड़े गौरव व प्रतिष्ठा से स्मरण किया जाता है, जिनके जीवनचरित्र का अवलोकन करना साधारण पुरुषों के अन्तःकरण को सच्चरित्र बनाने का हेतु बन जाता है, वे सब महानुभाव स्वाध्यायशील थे।

प्रबल स्वाध्याय के प्रताप का ही यह फल है कि विद्वानों ने परमेश्वर-रचित पदार्थों की सहायता से ऐसे २ अद्भुत और विचित्र गुणों का अविष्कार कर दिया कि जिनको स्वाध्यायहीन पुरुष अपने विचार में भी नहीं ला सकते। इसी विषय में उपनिषदों का वचन है—

स्वाध्यायान्मा प्रमदितव्यम्

अर्थात् स्वाध्याय से कभी भी प्रमाद (लापरवाही) न करना चाहिये। स्वाध्याय से मनुष्य के मनमें सुधार के अंकुर और बुद्धि में सूक्ष्मता उत्पन्न होती है जिससे मनुष्य उचितानुचित कार्य को जानकर अनुचित के परित्याग और उचित के ग्रहण में समर्थ हो जाता है। परम्परा से एवं भूतसन्मार्ग का प्रदर्शक स्वाध्याय ही है। जिस प्रकार नए अंकुर को जल की आवश्यकता होती है, जब तक उसकी मूल-शाखा जलाशय तक न पहुंच जाए। जल सेवन अंकुर

को वृक्ष और वृक्ष को सुपुष्पित सुपल्लवित बनाने का हेतु बन जाता है। बिना जल की सहायता के अंकुर मुरझा कर नष्ट होता है। ठीक यही सम्बन्ध मनुष्य जीवन के साथ स्वाध्याय का है। इससे मनुष्य के विचार शुद्ध और पवित्र होकर उसमें परोपकार करने की योग्यता का सम्पादन कर देते हैं जिससे मनुष्य अपने लिये हितकर होकर जनता के वास्ते हितकारी बन जाता है, जिससे संसार में सुख की मर्यादा उत्तरोत्तर स्थिर हो जाती है। प्रमाद से जो व्यक्ति अथवा जाति स्वाध्याय से विमुख होती जाती है, शनैः २ उसका अधःपतन होने लगता है। उसके शारीरिक, मानसिक और सामाजिक बल का ह्रास, जगत् में उपहास, इच्छा का विघात मनोमालिन्य, उदासीनता, आदि अनेक उपद्रवों के संचार से जीवनमात्र ही भार हो जाता है। अतः स्वाध्याय का सदैव आदर करो और कर्त्तव्य के पालन में तत्पर रहो। योगदर्शन में भी स्वाध्याय का फल बताया है—

स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगः

इसका आशय यह है कि स्वाध्यायशील पुरुष का इष्ट देवता के साथ मिलाप या उसके साथ आलाप होता है। यह विचारणीय विषय है। यथा आपके पुस्तकालय में अनेक प्रकार के पुस्तक रक्खे हैं। आज महात्मा व्यासदेवजी या महानुभाव शंकराचार्यजी महाराज संसार में नहीं हैं, परन्तु उनके साथ वार्तालाप करने का, उनके रचित शारीरिक सूत्र व भाष्यादि पुस्तकावलोकन के बिना उपायान्तर नहीं है। पुनः २ उनका स्वाध्याय करने से यह प्रतीत होता है कि हम उनसे ही आलाप कर रहे हैं। कारण यह है कि

उन ग्रन्थों में उन महानुभावों के ही मनोभाव विद्यमान हैं। यदाकदा आप को वेदान्त विषय में कोई शंका उत्पन्न हुई। वेदान्त-दर्शन के देखने से शंका निवृत्त होने पर विचारने से यह पता लगता है कि साक्षात् महात्मा व्यासदेवजी आये और शङ्कासमाधान करके आलमारी के एक कोने में जो उनका नियत स्थान है जा विराजे, यही उनके साथ मिलाप है। यदि आर्यसमाज अपनी सारी विभूति देकर भी महानुभाव ऋषि दयानन्दजी महाराज से वार्तालाप करना चाहे तो असम्भव है। वह संसार में विद्यमान् ही नहीं हैं, परन्तु उनके रचित सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका आदि पुस्तकों के स्वाध्याय से उनके साथ मिलाप और आलाप हो जाता है। इस कारण सर्व सज्जन महाशयों को न्यून से न्यून दो घण्टा स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये। परन्तु हम को आलस्य ने इतना दबाया है कि वह ऋषि जो पुस्तकाकार अलमारी में पड़े दीमक से सताये जा रहे हैं, उनका मिलाप तो क्या होगा किन्तु कोप तो अवश्य ही होगा। इस प्रकार का कोप किसी के सुख का कारण नहीं हो सकता। इस कोप की निवृत्ति स्वाध्याय से हो सकती है। आर्यसमाज के उत्सव समय जहां उपदेश व भजनादि होते हैं वहां एक समय इस विचार के लिये (कि आर्यसमाज व वैदिकधर्म की उन्नति किस प्रकार से हो सकती है ?) स्थिर किया जाता है। जहां कई और उन्नति के कारण बताये जाते हैं वहां स्वाध्याय का न होना उन्नति का बाधक और इसका होना उसका साधक प्रगट किया जाता है। इसमें विचित्रता यह है कि जो महाशय इस विषय की पुष्टि करते हैं वे स्वयं स्वाध्यायविहीन रहते हैं। यह कितनी त्रुटि की बात है।

स्वाध्याय के बिना सद्विचार स्थिर नहीं रहते। सद्विचारों के अभाव से सदाचार की हीनता प्रबल हो जाती है। सदाचार का दूर हो जाना किसी के भी सौभाग्य का कारण नहीं हो सकता, अतः स्वाध्याय को स्थिर करके अपने हिताहित की चिन्ता करो। सबका इष्टदेवता जो परमात्मा है उसके साथ सम्प्रयोग करने का उपाय स्वाध्याय ही है।

उदारशील बनो

जब तक मनुष्य का स्वभाव उदार नहीं होता तब तक उसके अन्तकरण से स्वार्थ का उच्छेद होना अति कठिन है, बिना इसके दूर हुए कोई भी पुरुष लोकोपकार का काम नहीं कर सकता।

जैसे आंख को भिन्न २ रंगों को देखने के लिये प्रकाश की आवश्यकता होती है, इसी प्रकार परोपकार करने के लिये स्वार्थ-त्याग की जरूरत है। जो लोग खुदगर्जी को छोड़े बिना परोपकार करने में तत्पर होते हैं वे वास्तव में धर्म की मर्यादा को नहीं जानते। धर्ममर्यादा के स्थिर करने में वे ही पुरुष सामर्थ्यवान हुए जिन्होंने स्वार्थ को छोड़ कर अपने आपको उदारचित्त बनाया। किसी कवि ने उदार और अनुदार पुरुषों का स्वभाव एक श्लोक में वर्णन किया है—

अयं निजः परोवेत्ति गणना लघुचेतसाम्। उदारच-रितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्।

यह मेरा है और यह अन्य है, ऐसा लघु विचार स्वार्थी पुरुषों का होता है। जो परोपकार करने की भावना से ओतप्रोत हैं उनके विचार आकाश की तरह वे रोक-टोक होते हैं, सम्पूर्ण संसार उनका कुटुम्ब अर्थात् अपना आप ही होता है। जिस प्रकार पुरुष अपने लिये या अपने अङ्गों के लिये अहित-चिन्तन नहीं कर सकता परन्तु हित में ही लगा रहता है, ऐसे ही उदारवृत्ति पुरुष प्राणीमात्र की हितचिन्ता सदैव करते रहते हैं।

अतः पुरुषों को परोपकार करने के लिये स्वार्थ-त्यागी और

उदार बनने का यत्न करना चाहिये। स्वार्थ अर्थात् खुदगर्जी मनुष्य के उदार भावों को नष्ट कर दुष्ट भावों को, जो प्राणीमात्र के दुःख का बीज हैं, उत्पन्न कर देती है। दुष्ट भावों के विषय में महात्मा मनु जी महाराज इस प्रकार लिखते हैं—ध्यान से सुनिये—

वेदास्त्यागश्च, यज्ञश्च नियमाश्च तपांसिच।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्॥

वेदों का पढ़ना, त्याग, यज्ञ, नियम और तप सर्वोपरि जन्म-मरण के जाल को काट कर मोक्ष के साधन हैं। परन्तु जिसका भाव दुष्ट है उसके लिये ये फलदायक नहीं हो सकते।

चारों वेद—जिनमें कर्म, उपासना, ज्ञान और विज्ञानकाण्ड का निश्चय किया हुआ है जो मनुष्यमात्र के लिये सन्मार्ग प्रदर्शक है।

त्याग—पुरुष के जीवन में त्याग एक ऐसी शक्ति है जिससे वह परमात्मा को प्राप्त कर सकता है।

नियम—योगशास्त्र में नियम पांच प्रकार के कहे गये हैं:—

१. शौच—वाह्याभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का है। बाह्य-जलादि से शरीर की शुद्धि; आन्तरिक-सत्य भाषणादि के द्वारा मन की शुद्धि करना।

२. सन्तोष—स्तुति, निन्दा, हानि, लाभ, मान और अपमान में सत्य का परित्याग न करना सन्तोष कहाता है।

३. तप—विपत्ति के समय धैर्य का न छोड़ना और सम्पत्ति में निरभिमान रहना तप माना गया है।

४. स्वाध्याय—वेदादि सत्य शास्त्रों का सदैव विचार करते

रहना स्वाध्याय कहा गया है।

५. ईश्वर प्रणिधान-अशुभ कर्मों के करने में सदैव ईश्वर का भय और शुभ कर्मकलाप को ईश्वरार्पण करना।

तप—मलविक्षेप के दूर करने के लिए सदैव प्रयत्न करना तप कहाता है।

जब मनुष्य के शुद्ध भाव होते हैं तब विद्यादि सत्य शास्त्रों का फल यथार्थरूप में होता है, मनोमालिन्य होने से (जैसे मलिन दर्पण में देखने से मुख मलिन दीखता है) वेदादि सत्य शास्त्र आत्मा के लिए हितकर नहीं होते।

अतः मनुष्य के शुद्ध भाव होने से वेदादि शास्त्र सन्मार्ग-प्रदर्शक होते हैं, अन्यथा नहीं। इसलिये प्रत्येक पुरुष को उचित है कि वह उत्तमाधिकारी बने और अपने मन को पवित्र करने में सदैव प्रयत्न करे। इस उदाहरण से आप अच्छी प्रकार समझ सकते हैं कि एक पात्र जिसमें अम्ल (खटाई) लगी हुई है यदि उसको स्वच्छ किये बिना उसमें दूध डाल दें तो वह दूध अपनी असली दशा में नहीं रहता, पात्र के दोष से दूषित होकर दुग्ध फट जायगा। इसी प्रकार विद्या दुष्ट भावों से मिलकर अविद्या में परिणत हो जाती है जो पुरुष को सन्मार्ग से हटा कर असन्मार्ग (कुटिलमार्ग) की ओर ले जाती है, जो संसार में शान्ति के भङ्ग करने का निमित्त बन जाती है। जिसके अन्तःकरण में शुद्ध भावों का उदय होता है उसका यह स्वभाव बन जाता है कि स्वयं अनेक प्रकार के कष्ट उठा कर भी लोकोपकार का काम नहीं छोड़ता।

उदार वृत्ति के बिना शुद्धभाव नही होता और बिना शुद्धभाव के लोक का हित होना अति कठिन है। उदारता शुद्धभाव को

उत्पन्न करके पुरुष को विपत्ति के समय अति कठोर और सम्पत्ति के समय विनीत, और दुःखित को देखकर करुणामय बना देती है। बस ऐसे पुरुषों की अधिकता संसार को सुखमय बनाने का हेतु बन जाती है। किसी कवि ने इस पर बहुत ही अच्छा विचार किया है। जैसे—

आकोपितोऽपि सुजनो न वदत्यवाच्यम्,
निष्पीडितोऽपि मधुरं क्षरतीक्षुखण्डः।
नीचो जनो गुणशतैरपि सेव्यमानो,
हास्येषु यद्वदति तत्कलहेषु वाच्यम्।

जिस तरह इक्षु-दण्ड (गन्ना) पेला जाने पर भी मधुर रस ही छोड़ता है ठीक इसी प्रकार उदारवृत्ति सज्जन पुरुष अनेक कष्ट पड़ने पर भी लोकहित की चिन्ता ही करते रहते हैं, न्यायपथ से कभी भी पृथक् नहीं होते। तथा उदारताहीन पुरुष का बल, बुद्धि और पुरुषार्थ सब स्वार्थ के लिये ही होता है। स्वार्थ के रुकने से कलह के उत्पन्न करने में कटिबद्ध हो जाते हैं, अतएव कवि ने ऐसे पुरुषों को नीच शब्द से याद किया है।

महानुभाव ऋषि दयानन्द महाराज ने बुद्धि की शुद्धि द्वारा विद्या को ग्रहण किया, शुद्ध भावों के साथ मिल कर विद्या ने अन्तःकरण में जगतहित अर्थात् उदारवृत्ति को उत्पन्न कर दिया। उदारता ने फिर स्वार्थ को आने का अवकाश ही नहीं दिया। उदारवृत्ति ने अविद्या को, जो मनुष्य को स्वार्थी बनाने का एक मुख्य कारण है, दूर करने में कितने ज़ोर से संग्राम किया। इस वृत्ति में एक और विचित्र शक्ति है जो ऋषि के चरित्र से हमको प्रत्यक्ष मिलती है; उदार पुरुष के साथ चाहे कोई

कितना हो अनुचित कार्य क्यों न करे, वह वृत्ति उसको उदार बने रहने के लिये ही बाधित करती है। सुनिये—

ऋषि को एक पुरुष ने, जो हेत्वाभास की तरह ऊपर से मित्र और भीतर से शत्रु था, विष दे दिया। अचेत अवस्था में किसी ने स्वामी जी से कहा कि वह मनुष्य पकड़ा गया। कई बार ऐसा कहने पर स्वामी जी ने शनैः २ उत्तर दिया कि उसको छोड़ दो। मुक्ति का उपदेश करने वाला, सन्मार्ग दिखलाने वाला किसी को न बन्धन में फंसाता और न उल्टे मार्ग पर चलाता है। इस के पश्चात् जब स्वामी जी को नशे के दूर हो जाने से होश आया तो मनुष्य समुदाय की उपस्थिति में उस पुरुष को जिस ने स्वामी जी को विष दिया था लाये, तो स्वामी जी ने फिर कहा कि अच्छा, जो हुआ सो हुआ, अब इस को छोड़ दो। लोगों ने कहा कि स्वामी जी महाराज, ऐसे मनुष्य को छोड़ना उचित नहीं क्यों कि यह बड़ा दुष्ट है। ऋषि ने इसका यह उत्तर दिया कि आप लोग विचार तो करें कि जब एक आदमी अपनी बुराई को नहीं छोड़ता तो एक सज्जन पुरुष अपनी भलाई को छोड़ दे, सो कब उचित है ?

इस परीक्षा से आप को पता लगा होगा कि उदारवृत्ति, पुरुष को कैसे उत्तम और सहिष्णु बनाती है और मनुष्य जीवन को उच्च आदर्श की तरफ़ ले जाती है। अतः मनुष्य को उचित है कि वह उदार बनने का यत्न करे अथवा लोकहित-चिन्ता को सर्वथा त्याग दे। यही सर्व सत्यशास्त्रों की मर्यादा है।

———

अभ्यासी बनो

अभ्यास के बिना कोई पुरुष संसार में प्रतिष्ठा व मान का भागी नहीं हो सकता। तब तक संसार में कोई भी मनुष्य या मनुष्य समुदाय अपने आप को उन्नतावस्था में नहीं ले जा सकता जब तक वह अभ्यास करने को अपना मुख्य कर्त्तव्य न मान ले। आज संसार में जितने अद्भुत दृश्य व विचित्र घटनाएं दृष्टिगोचर हो रही हैं, वे सब अभ्यासशील जनों की क्रीड़ामात्र ही हैं। अभ्यास में यह एक विचित्र शक्ति है कि कोई भी वस्तु व मार्ग कितना ही कठोर अथवा विकट क्यों न हो इसके बल से सरल और सुगम हो जाता है। और इसके अभाव में साधारण से साधारण कार्य, सुगम से सुगम पथ, भी भयंकर रूप धारण कर असाध्यसम होकर प्रतीत होता है। अन्वयव्यतिरेक व कार्यकारणभाव से सिद्ध होता है कि अभ्यास ही मनुष्यों की सुख सम्पत्ति और निःश्रेयस (मोक्ष) का एक मात्र कारण हैं और अभ्यास का न होना ही भ्रमजाल में फंस कर दीन, बलहीन, मतिमलीन होकर जन्ममरणादि अनेक विधि दुःखों का कारण हो जाता है। अब मैं दो दृष्टान्त आप के सामने रखता हूं। पाठक महोदय उनको पढ़कर अभ्यास के महत्व का अनुभव कर कर स्वयम् अभ्यासी होने का यत्न करेंगे।

वेदों में अधिक समास नहीं हैं, जो हैं वे दो २ व तीन २ पदों से मिल कर बने हैं। क्रिया व उपसर्ग सब ही प्रत्यक्ष और भाषा सरल है। परन्तु अभ्यासाभाव से यथार्थ रूप में उनका

अर्थबोध होना कितना कठिन प्रतीत हो रहा है। महीधरादि विद्वानों को (यह जानते हुए भी कि वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं) किंचित बोध न हुआ कि निर्भ्रान्त परमात्मा की शान में इस प्रकार की अश्लील वाक्यरचना व गाथा हो सकती है वा नहीं? यहां अभ्यास का व्यतिरेक है। वर्तमानकालीन काव्यों में समास बहुत और दीर्घ हैं. अप्रतीत क्रिया, कठिन भाषा है, परन्तु अभ्यासाधार से सुगम हो रहे हैं। यहां अभ्यास का अन्वय है। वेदों के पठन-पाठन से परमात्मा का ज्ञान, आत्मा का कल्याण, कर्त्तव्य की पहिचान और दुःखों का नाश होता है। जिस देशके महानुभाव ऋषि मुनियों ने अभ्यासी होकर वैदिक ज्ञान के द्वारा धर्म, अर्थ काम, मोक्ष के मार्गों का निर्देश कर दिया था, आज उन्हीं की सन्तान आलस्य और प्रमाद में फंस कर मिथ्याभिमान, वैर विरोध और रसमोरिवाज के कीचड़ में धंस कर जिस दुःख को अनुभव कर रही है, वह कथन से बाहर है।

(२) इसके विपरीत अन्य साधारण देश निवासियों ने लगातार अभ्यास का आश्रय लेकर विचित्र और अद्भुत वस्तुओं का आविष्कार करके सांसारिक सुख को प्राप्त किया और प्रतिष्ठा के भागी हुए। मित्रवर! यह अभ्यास ही की तो महिमा है कि वे जिस वस्तु की अनायास रचना कर देते हैं, हम अभ्यासहीन पुरुषों की समझ में आती ही नहीं।

परमात्मा की सृष्टि में सब पदार्थ विद्यमान् हैं, अभ्यासशील पुरुष उन पदार्थों की संयोजना व वियोजना के द्वारा उनको अपने अनुकूल और सुख के साधन बना लेता है परन्तु अभ्यासरहित उन सुख-साधनों की उपस्थिति में भी सुख से वञ्चित

होकर दुःख पाता है। महानुभाव ऋषि दयानन्द जी महाराज ने अभ्यासी होकर वेदों के शब्दार्थ-सम्बन्ध की छानबीन की और जानलिया कि वेदों से बढ़ कर मनुष्य जीवन को पवित्र करने वाली और कोई शिक्षा नहीं है। इसलिये "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य कर्त्तव्य है," यह नियम बना दिया। उनको यह निश्चय था कि यदि आर्य्य सन्तान आलस्य त्याग वेदों के अभ्यास में तत्पर हो जावे तो अपने कर्मों को पहिचान कर वर्णाश्रम व्यवस्था का ठीक २ पालन करने लग जावेगी। तब संसार का उपकार करना कुछ भी कठिन न होगा।

अतएव आर्य्य सज्जनो ! अभ्यासी बनो, अभ्यास करना सीखो, आने वाली सन्तान को अभ्यासशील बनाओ। सत्य है "अभ्यसनशीलाः सुखिनो भवन्ति"। सद्गुण सम्पत्ति के लिये लगातार प्रयत्न करने का नाम अभ्यास है।

(१) अभ्यासी पुरुष व्यसनी नहीं होता, क्योंकि बाह्य विषयों से आने वाले संस्कार उसके अन्तःकरण में स्थिर नहीं होते।

(२) अभ्यास करना यद्यपि कठिन तो प्रतीत होता है, किन्तु यदि पुरुष कुछ काल तक इसका आदरपूर्वक सेवन करे तो फिर अभ्यास ही उसको नहीं छोड़ता और हिताहित मार्ग का आचार्य्य बन कर उत्तरोत्तर जीवन को पवित्र बनाता है।

(३) अभ्यासी पुरुष ही अरोग्य रहता है और उपकार करने में सामर्थ्यवान् होता है।

(४) अभ्यासी पुरुष अभ्यास के कारण बलहीन कभी नहीं होता।

(५) अभ्यासी पुरुष अभ्यास के बल से मृत्यु से नहीं डरता। कारण यह कि उसका जीवन आत्माधार है।

विचारशील बनो

बिना विचारे जो कार्य किया जाता है उसका परिणाम ठीक नहीं होता। कर्त्ता के अनुकूल फल का न होना जगत् में उपहास और अन्तःकरण में पश्चाताप का कारण बन जाता है, जिससे विकलता की वृद्धि और परिश्रम की हानि उत्तरोत्तर विचारों की दुर्बलता का निमित्त हो जाती है। संसार में संपूर्ण कार्य विचाराधीन हैं। अतएव संसार-क्षेत्र में सदैव सब को विचारपूर्वक कार्य करना ही उचित है। विचारने और शास्त्रावलोकन से यह बात स्पष्ट विदित हो जाती है कि जब तक अन्तःकरण सद्विचारों के प्रभाव से प्रभावित नहीं हो जाता तब तक लोकोपकार करने का अंकुर उसमें उदय ही नहीं होता। परहित-चिन्ता का मूल कारण सद्विचारों की जाग्रति ही है। इसके बिना तो मनुष्य अपना उपकार भी आप नहीं कर सकता, औरों का उपकार करना तो अति दूर है। सुविचार प्रथम पुरुष के मन में सद्गुणों का प्रसार करके उसको उपकार के योग्य बनाते हैं, तत्पश्चात् उस पर लोकोपकार करने का रंग जमाते हैं। सभ्यजनो ! यदि हम किञ्चित विचार से काम लें तो कितना सीधा और सरल मार्ग प्रतीत होता है कि जो स्वयं बली व गुणी हैं वे औरों को बलवान् व गुणवान् बना सकते हैं अन्यथा नहीं। कारण यह है कि जो वस्तु जिसके पास उपस्थित ही नहीं है वह अन्य पुरुषों को नहीं दे सकता। संसार में जिन महानुभावों

ने परोपकार के लिये कदम उठाया, उन्होंने प्रथम दीर्घ काल तक निरन्तर और संस्कारपूर्वक उसके साधनों के एकत्रित करने में प्रयत्न किया। साधनसंपन्न होते ही अन्तरंग में उदारवृत्ति की तरंग उठने लगी। उस तरंग के उठते ही 'उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्' का राग आलापने लगे। यही मनुष्य जीवन की अन्तिम सीमा है। इस वृत्ति में एक अद्भुत शक्ति है कि सत्य के विरोधी पदार्थों को, चाहे वे कितने ही प्रिय और सुख के साधन क्यों न हों, परित्याग कर देती है और सदैव सत्य की रक्षा करती है। स्वभाव इसका विचित्र है। यह उदारता की वृत्ति दुःखी, दीन, बलहीनों को देखकर अतीव कोमल हो जाती है। असहायों की सहायता करना, विद्याहीनों को विद्यादान, बलहीनों को बल प्रदान करना ही अपना मुख्य उद्देश्य बना लेती है। तन, मन, धन अर्थात् सर्वस्व को परोपकार के अर्पण कर देती है और विपत्ति के आने पर अति कठोर वज्रसम होकर सहारती है। प्रत्येक विपत्ति इसके सामने सम्पत्ति के रूप में बदल जाती है। अतएव विचारशील बनना और विचारपूर्वक कार्य करना ही सब पुरुषों को हितकारी हो सकता है। जब तक अन्तःकरण सच्चरित्र नहीं होता तब तक इस उदार-वृत्ति का चित्र उसमें उतर ही नहीं सकता। अन्तः-करण की सन्मार्ग-प्रवृत्ति का कारण सत्संग और महान् आत्माओं के चरित्रों का स्मरण करना ही है। महाभारत युद्ध के लगभग तीन सहस्र वर्ष के बाद महात्मा बुद्ध का आविर्भाव हुआ। मनुष्य की जीर्ण दशा व मरणावस्था को

निहार कर उसके अन्तःकरण में एक आघात हुआ जिसके होते ही उदार वृत्ति का विकास हो गया। दुखियों के दुख को दूर करना ही अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य मान लिया। कुछ काल तक संसार के सुख को अनुभव करते हुये जब एक पुत्र उत्पन्न हुआ तब फिर उस वृत्ति का उत्थान हुआ। उदासीन होकर संसार के सुख को त्यागने के लिये कटिबद्ध हो गये। चलते समय पुत्र-दर्शन का स्नेह हृदय में उत्पन्न हुआ। अपनी माता के पहलू में बालक जहां शयन कर रहा था, उसी स्थान में जा उपस्थित हुए। अद्भुत दृश्य का सामना हुआ। आंखों से आंसू बहने लगे, शरीर कांपने लगा। एक ओर पुत्र का स्नेह दूसरी ओर लोकोपकार का ध्यान! क्या ही विचित्र घटना है? उदार-वृत्ति परहित-चिन्ता का मार्ग दिखाती है, पुत्र की प्रीति मोह में डाल कर जगत में फंसाती है। इस मानसिक संघर्ष के बाद बुद्ध ने पुत्र-स्नेह का परित्याग कर दिया। उन्हें योगीराज कृष्णचन्द्र की निम्नोक्ति का ध्यान हुआ—

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयाऽपहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।

मन के विषय-वासना में फंसने से लोकोपकार नहीं हो सकता। ऐसा विचार कर जंगल का मार्ग लिया। साधन-सम्पन्न होकर महात्मा बुद्ध ने दीन दुखियों के क्लेश-मोचन और शांति प्रदानार्थ जो प्रयत्न किया उसे पाठकगण स्वयं जानते ही हैं, अधिक कथन की आवश्यकता नहीं है। बुद्ध देव के देहान्त के बाद कुछ काल तक तो उसके उद्देश्यों की

उन्नति होती रही, उसके पश्चात् जिन त्रुटियों के दूर करने का यत्न किया था, उन्हीं दोषों ने आ घेरा। महात्मा का कथन था कि कर्म-तन्त्र संसार है। कर्म के सुधार से मनुष्य जीवन का सुधार हो सकता है। सो इनके पश्चात् उन्हीं के सिद्धांतों का निरादर होने लगा।

बुद्ध के पश्चात् महानुभाव शंकर का आविर्भाव हुआ। गुरुकुल से विद्याव्रत स्नातक होकर निकले ही थे कि वैदिक धर्म के विरुद्ध मत का प्रचार देखकर मन में खेद का संचार हुआ। तत्काल ही उसकी निवृति और पुनः वैदिक धर्म की प्रवृति का उपाय सोचने लगे। प्रसन्नता से ओजस्वी शंकर सन्यास ग्रहण करके लोकोपकार में यत्न करने लगे। सत्य है—

उदार वृत्तिविशिष्टाः परदुःखप्रहाणाय कृतप्रयत्ना भवन्तीति नेतरो जनः।

अब विचारना यह है कि जिस वेदांत की शिक्षा ने शंकर को परोपकार करने के लिये उद्यत किया और आलस्य और प्रमाद को त्याग कर आजीवन वैदिक धर्म के प्रचार के लिये यत्न करते रहे, कितने शोक की बात है कि आज उनके अनुयायी उसी वेदांत शास्त्र को पढ़ कर, आलस्य और प्रमाद में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। परहित-चिंता तो दूर रही, अपकार की ओर उलटा संसार को लगा रहे हैं। उन्होंने बताया था कि 'वेद नित्यमधीयताम' अर्थात् वेदों का स्वाध्याय नित्यप्रति करना चाहिए। 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इस ब्रह्म सूत्र पर भाष्य करते हुये लिखा था कि साधन चतुष्टय के अनन्तर अर्थात् विवेक, वैराग्य, षट्सम्पति और मुमुक्षुत्व इन साधनों के पश्चात् ब्रह्म के साक्षात्कार करने का प्रयत्न

चाहिये। अब अपने आप को शंकर का अनुयायी कहने वाले संपूर्ण साधनों को त्याग कर स्वयमेव ब्रह्म बन बैठे। उपकार कैसे हो सकता है जब कि उपकार के साधन उपस्थित ही नहीं हैं।

आज से कुछ काल पहिले जब कि एक भयंकर समय था उपस्थित हुआ था, एक ओर ईसाई मत का प्रचार और दूसरी ओर इस्लाम का विस्तार प्रबल वेग से हो रहा था, ऋषि दयानन्द का प्रादुर्भाव ठीक उसी समय हुआ। बाल्यावस्था से ही उन पर उदार वृत्ति अपना शासन करने लगी। समय पाकर गृह का परित्याग कर दिया और लगातार जंगलों पर्वतों में परिभ्रमण करते हुए साधनों का संचय करते रहे। मृत्यु के भय से निर्भय होकर और ईश्वर का साक्षात् करके जिस अमूल्य धन का संचय किया था, उस का वितरण, और विपरीतमार्ग में प्रवृत्त हुए जनों को सन्मार्ग दिखलाने में यत्न करने लगे। अनेक विपत्तियों के आते हुए भी बड़े प्रबल वेग से पाखंड का खंडन करना ही अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया और आज्ञा दी कि सर्वथा वैर विरोध निवारण करना तुम्हारा कर्तव्य होना चाहिये। उनकी शिक्षा वेदादि सच्छास्त्रों के भाष्य से विदित ही है अर्थात् सत्यवादी, सत्यमानी और सत्यकारी होना, अनुचित अभिमान का त्याग, उचित अभिमान होना और कल्याण का मार्ग ग्रहण करना। ठीक है—"सत्यश्रमाभ्यां सकलार्थ सिद्धिः"।

प्रिय पाठकगण! कर्मरूपी धन को ऋषि ने आपके अधिकार में दिया है। तब तक हम उसकी रक्षा व वृद्धि कदापि नहीं कर सकते जब तक हम लोग उदार आत्मा न होलें, इसलिए सब सज्जनों को उदारवृत्ति वाला होने का प्रयत्न करना उचित है।

स्वास्थ्य का मूल-मन्त्र

प्रारम्भिक भूल—एक मनुष्य ने वन में हरी २ घास पर दियासलाई सुलगा कर फैंक दी, घास पर उसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। इस प्रकार के स्वभाव से प्रेरित होकर मनुष्य ज्येष्ठ मास में सूखी हुई घास में दियासलाई फैंक देता है, अब क्या ठिकाना है, इस भूल से घास तो अब जल कर रहेगा। इसी प्रकार भारत निवासियों से आरम्भ में भूल हुई है! मनुष्य जीवन की नींव क्या है? 'ब्रह्मचर्य'। इसी को खराव कर दिया है। मनुष्य को अपने जीवन में ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम में से गुजरना पड़ता है। ब्रह्मचर्य्य को प्रथम श्रेणी में क्यों रक्खा गया है? इसलिये कि यह शेष तीन आश्रमों की नींव है, इसके बिगड़ने से सब बिगड़ जावेगा और इसके बनने से सब बन जावेगा। यदि एक राज किसी मकान की नींव में टेढ़ापन करदे तो फिर कई इंजीनियर मिल कर भी दीवार को सीधा नहीं कर सकेंगे। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य्य में टेढ़ापन आजाने से और इसके दूषित होने से तीनों आश्रम खराब हो जाते हैं।

ब्रह्मचर्य्य कितनी अमूल्य वस्तु है—ब्रह्मचर्य्य की महिमा वेदों ने बहुत गाई है। वेद कहते हैं कि यज्ञ निष्फल हो जावेगा यदि ब्रह्मचर्य्य का बल इसमें न होगा। जो पुरुष ब्रह्मचर्य्य से सुरक्षित होते हैं उनको वीर्य्य का लाभ होता है। वीर्य्य क्या है? वीर्य्य शरीर में सातवीं धातु है। जो भोजन मनुष्य आज खाता है वह जठर की अग्नि से पचकर ४½ दिन के पीछे रस बनता है, फिर ४½ दिन के पीछे इसी अग्नि पर पक कर रुधिर बनता है, उसके पीछे फिर ४½ दिन में वह रुधिर व मांस बनता है, फिर ४½ दिन में मेधा बनती है, इस मेधा धातु को फिर ४½ दिन अग्नि में तपना पड़ता है जिससे स्नायु बनता है, फिर ४½ दिन पीछे आग

में तपने से यह हड्डी मज्जा बनती है, और ४½ दिन के पश्चात् आग में तप कर वीर्य्य बनता है। सारांश यह कि ३२ दिन के पीछे आज का खाया हुआ अन्न का वीर्य्य के रूप में परिवर्तन होता है। लोग पैसों की अधिक पर्वाह नहीं करते जितनी दुवन्नियों की, रुपयों की इनसे अधिक, और फिर यदि पौंड हों तो उनकी सबसे अधिक पर्वाह होती है, यदि हीरा हो तो फिर संभाल का क्या कहना ? अब कहो जो वीर्य्य इतने परिश्रम से तैय्यार होता है, उसकी रक्षा करनी चाहिये या नहीं ? आप एक आम को देखें. उसके बीज को सात पर्दों के बीच संभाल कर रक्खा हुआ है। उसका प्रथम आवरण उसकी खाल है जसके अन्दर रस है, दूसरा वह है जिस भाग ने रेशों को पकड़ा हुआ है, तो तीसरा रस है, चौथा परदा गुठली जो कठिन होती है, इस गुठली को कठिनता से तोड़ दें तो इस सन्दूक के दोनों भागों के अन्दर पर्दे लगे हैं जिसके पीछे गुठली है जो कुछ कोमल होती है। फिर उसके अन्दर छोटे २ दाने हैं जिन के अन्दर आम उत्पन्न करने का पदार्थ है। किस रक्षा से इस बीज को रखा हुआ है! वह बीज यदि पका हुआ हो तो आम कैसा सुगंधियुक्त और स्वादिष्ट होता है। इसी प्रकार जिस मनुष्य के शरीर में वीर्य्य है उसके मुख पर सौन्दर्य्य और शरीर में दृढ़ता होती है और वह बलवान् होता है।

पुरुष कौन है ?—परन्तु जब पुरुष वीर्य्यहीन है तो फिर सुन्दर कैसे बने, काम किस प्रकार हो ? जब तक शरीर में वीर्य्य का संचार न होगा तब तक पुरुषार्थ न होगा, और जब पुरुषार्थ न होगा तो काम क्या होगा ? एक राजा एक ऋषि के पास गया और उससे कहा, मेरी कन्या विवाह के योग्य है, मैं क्या करूं, हर घड़ी शोकातुर रहता हूँ। ऋषि कहते हैं, राजन ! किसी पुरुष के साथ इसका विवाह कर दो। राजा कहता है, क्या अपुरुष के साथ भी

कन्या का विवाह होता है, यह आप ने क्या कहा है? ऋषि ने कहा, संसार में बहुत से पुरुष वास्तव में पुरुष नहीं होते, केवल पुरुष के रूप वाले होते हैं। मेरे कथन का तात्पर्य्य यह है कि जिस पुरुष के अन्दर पुरुषार्थ है, उसके साथ विवाह कर दो। ठीक है यह बात कि जो पुरुषार्थ का लाभ करता है वही पुरुष है, और जिसके अन्दर पुरुषार्थ नहीं है वह पुरुष नहीं है। वेदों में एक मन्त्र आता है कि जिस समय ब्रह्मचारी गुरू के पास जाता है तो गुरू तीन रात्रि उसको गर्भ में धारण करता है। उसका आशय यह है कि जिस प्रकार माता के गर्भ में बैठा हुआ शिशु माता के संस्कारों से अपने संस्कार बना रहा है, परन्तु वह कोई चेष्टा नहीं कर सकता, सिवाय अपनी वृद्धि के। अतः ब्रह्मचारी गुरू के पास इस प्रकार रहे जैसे गर्भ में है। आज आचार्य भी वैसे नहीं जो शिष्य को ऐसा बनायें और शिष्य भी नहीं जो ऐसा बन सकें। गुलाब की कली कितनी कठोर होती है परन्तु दूसरे दिन उसमें कोमलता आजाती है, तीसरे दिन और कोमल उसका मुँह खुल जाता है, एक और दिन व्यतीत होने के पश्चात् वह कली खिल जाती है और सुन्दर पुष्प बन जाती है। परन्तु यदि माली उस कठोर कलि को हाथों से मल २ कर कोमल करे और एक आध घण्टा के बल से उसकी पंखडियों को भी खोल ले तो निःसन्देह वह खिल तो जायगी परन्तु न वह सुंदर होगी और न सुगंधि देगी, वह जल्दी ही मुर्झा जाएगी। इसी प्रकार जिनका ब्रह्मचर्य्य पूरा नहीं हुआ, जो अपनी वृद्धि धीरे २ करके और वीर्य्य का संचार करके नहीं बढ़े, और जिन्होंने अपनी जीवन-कलि को अपने हाथों या गन्दे भावों से तोड़ दिया है, उनके मुख पर न लाली आती है और न उनके जीवन में मिठास होती है।

स्मरण रक्खो जिस प्रकार भूगर्भ-अग्नि पृथ्वी को एक स्थान पर ठहरने नहीं देती, हर समय घुमाती और प्रत्येक समय गतिशील

रखती है, इसी प्रकार यदि वीर्य मनुष्य के अन्दर है तो उसे चालाक, फुर्तीला और बलवान् बनाता है, कभी निरुत्साही नहीं होने देता। वह कभी दरिद्री को देखकर आंख नहीं चुराता। जिसके शरीर में वीर्य हो वह दुःखियों की सेवा करता है। वीर्यहीन पुरुष के पास महान् आत्मा कैसे आ सकती है? जैसी सामग्री डालोगे वैसी सुगन्धि आवेगी। जो पुरुष दूसरे के दुःख में दुखी होते हैं उनके विचार में कौन-सा ईन्धन जलता है? देखो, वह ईन्धन वीर्य्य है। जो इस वीर्य को अपने मस्तिष्क में जलाते हैं उनके सन्मुख सब वस्तु हाथ बांधे प्रस्तुत हो जाती हैं!

ब्रह्मचर्य्य का साक्षात् आदर्श—ऋषि दयानन्द के विचार क्यों इतने पवित्र थे? राजघाट कर्णवास में जाकर पूछो। जब गोकुलिये गुसाइयों का खण्डन किया तो एक ग्राम का जमींदार खड्ग लेकर सामने आया। स्वामीजी ने कहा, क्यों आये हो? उसने कहा कि आपने हमारा खण्डन किया है इसलिये आप को मार डालना चाहता हूँ। स्वामीजी ने कहा कि यदि तू क्षत्रिय है तो किसी राजा को जाकर बाहुबल दिखला और यदि तेरा काम मुझे मारने से ही निकलता है तो मुझे मार ले। ऐसा उत्साहजनक उत्तर क्यों दिया गया? इसलिये कि ऋषि के विचार, वीर्य्य का ईंधन जलाने से, बहुत पवित्र हो गये थे। मनुजी ने लिखा है कि मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचारी होकर ही विवाह कर सकता है। यदि मनुजी का यह नियम आज प्रचलित हो तो सारे विवाह करने वाले दण्ड के अधिकारी हो जायें। पहिले तो यह मर्यादा थी कि पहिले पहलवान बनो और फिर अधिकार लो। परन्तु अब यह है कि अधिकार पहले दे दो फिर पहलवान बनेंगे। ब्रह्मचर्य्य की मर्यादा जाती रही। हमने इस अमूल्य वस्तु का आदर नहीं किया और अब

सभी पश्चाताप कर रहे हैं।

सिंहनी एक बच्चा जनती है और सारे बन के लिये बहुत होता है। क्यों ? इसलिये कि वह वीर्य्यवान होता है। वीर्य्यहीन सन्तान, आगे चलकर सन्तान-उत्पत्ति को दृष्टिगोचर नहीं रखती, विषय-भोग को रखती है, जिससे नसल बिगड़ जाती। एक पुरुष प्रश्न करता है कि यह जो हीरा लाखों पौंड से लिया है इसकी रक्षा किसलिये करते हो ? तो दूसरा उत्तर देता है कि इसे हथौड़े से तोड़ डालने के लिये ! इसी प्रकार एक पुरुष ५०) तोले का इतर निकालता है और फिर उसे नाली में फैंक देता है ! तो आप दोनों को मूर्ख कहेंगे या नहीं ? परन्तु विचार करो और समझो कि क्या वह अधिक मूर्ख नहीं है जो वीर्य्य जैसे अमूल्य रत्न को इतर और हीरे की नाईं गंवा देता है।

वीर्य्यवान् पुरुषों की आपने बहुत कथाएँ सुनी होंगी। अरे सुन लो कथाएँ बहुत-सी, परन्तु सुनने से क्या होता है कुछ करो भी। स्वयं वीर्यवान् बनो। ध्यान रक्खो कि तुम्हारा यह अनमोल रत्न, वीर्य कहीं चोरी तो नहीं होता, छीना तो नहीं जाता ? ऋषि ने एक स्त्री को देखा था तो दो दिन भूखे-प्यासे जागते रहे और मन को सीधा कर दिया था। यह थे ऋषि।

स्मरण रक्खो ! कोई किसी को नहीं गिराता, मनुष्य अपने दुष्कर्मों से स्वयं गिर जाता है। आज बहुत कठिन समय आ रहा है, व्यसन बढ़ गए हैं, इसलिये बड़े उद्योग की आवश्यकता है। एक ही व्यसन हो तो विपत्ति ले आता है, यहां तो ठिकाना ही नहीं। कितने तीव्र परिश्रम की आवश्यकता है ! इस उद्योग में सफलता प्राप्त करने के लिये वीर्यवान् बनने की आवश्यकता है।

धर्म का आश्रय लो

लोग कहते हैं कि उपदेश का अधिकार सब को है परन्तु शास्त्र की कुछ और ही सम्मति है। शास्त्र लिखते हैं "जीवन मुक्त निश्चः उपदेशः" अर्थात् उपदेश का अधिकार जीवन-मुक्त पुरुष को ही है। जो स्वयमेव मार्ग भूल गया है वह दूसरों के पथ का प्रदर्शक नहीं हो सकता। एक दृष्टान्त देता हूं—एक पंडित बड़े प्रभावक शब्दों में मद्यपान के विरुद्ध उपदेश करता था। एक पुरुष ने उसके उपदेश से प्रभावित होकर मद्यपान त्याग दिया। इसके २-३ दिन पश्चात् वह पुरुष उस पंडित को धन्यवाद देने के लिये उसके गृह पर गया। जब पहुंचा तो क्या देखता है कि वह वह पंडित स्वयं मद्य का सेवन कर रहा है। यह देख वह चकित हो गया कि क्या यह वही पंडित है जिसकी युक्तियों को सुनकर मैंने मद्य का परित्याग कर दिया था ? उसके उपदेश का विपरीत प्रभाव पड़ा। अब उसको कितना उपदेश करो वह नहीं मानेगा। इसीलिये कहा गया है यदि तुमने किसी से कोई दुष्ट स्वभाव का त्याग कराना हो तो पहिले स्वयं उस दुष्ट स्वभाव का परित्याग कर दो। संसार में जीवन ने जीवन डाला है। जिनका का कथन कुछ और है, मन्तव्य कुछ और कर्तव्य कुछ और, उन्होंने संसार में कभी कोई काम नहीं किया।

किसी आर्यसमाजी से पूछा जाता है कि क्यों जी आप कौन हैं ? उत्तर मिलता है कि आर्यसमाजी विचार रखता हूं। भाई ! केवल विचार वाले आर्यसमाजी की आवश्यकता नहीं, यदि कभी थी तो वह समय व्यतीत हो चुका। अब तो कर्त्तव्यपरायण आर्यों की आवश्यकता है इसलिये यदि आपके मन में संसार-सुधार की चिन्ता है, तो पहले आप सुधरो। अन्य लोग तुम्हारे कर्त्तव्यों का अवलोकन कर सुधर जावेंगे। अब प्रश्न यह है कि अपना सुधार कैसे करें ?

आप प्रतिदिन देखते हैं कि यदि भोजन में ज़रा सा बाल आजावे तो भोजन खाया नहीं जा सकता, परन्तु शिर पर असंख्य बाल हैं। कफ और रुधिर को देख कर अत्यन्त घृणा होती है परन्तु शरीर के भीतर यह सब कुछ विद्यमान् है। शरीर के समस्त अङ्गों से मैल निकलता है। फिर कौन सी वस्तु इसमें है जिससे यह पवित्र समझा जाता है। शास्त्र बतलाते हैं कि आत्मा का संयोग ही शरीर की पवित्रता का कारण है। यदि अन्तःकरण के शुद्ध रक्खा जावे तो शरीर और आत्मा दोनों शुद्ध रह सकते हैं इसलिये सब से बड़ी आवश्यकता अन्तःकरण के मार्जन की है। अन्तःकरण की शुद्धि कैसे हो? अन्तःकरण को शुद्ध करने वाली सब से पहली शक्ति 'काम' है। इस शक्ति का सुधार करने के लिये शास्त्र कहते हैं 'अशुभ गणानाम इच्छा कामः' अशुभ सङ्कल्प यदि दब गये तो आपने काम को जीत लिया। अशुभ गुणों की इच्छा का नाम ही काम है। इसलिये जीवन सुधारने के लिये सब से पहला साधन शुभ इच्छा पैदा करना है।

दुष्कर्मों से घृणा सच्चा 'क्रोध' है। अपने भीतर ऐसा बल पैदा करना जिससे कोई दुष्ट भाव अन्तःकरण को मलीन न कर सके।

लोभ—लोभ का यह आशय नहीं जो हमने समझा रक्खा है कि जिस प्रकार भी बने धन मिल जावे लेलेना। शास्त्रकार बतलाते हैं—आत्म रक्षणाम् सदैव लोभः—ऐसी वस्तु का लोभ करना जिससे आत्मा की रक्षा हो। हमारी अवस्था आजकल बहुत पतित हो रही है। धर्म्म के कामों में समय इसलिये नहीं देते कि यहां से कुछ लाभ प्राप्त होता दिखलाई नहीं देता। और धन इसलिये नहीं देते कि लोभ है। और यदि किसी के अत्यन्त प्रेरणा करने पर एक रुपया दे भी दिया तो फिर समाचारपत्रों में देखते हैं कि हमारा नाम छपा है या नहीं?

एक धनवान् पुरुष का वर्णन है कि वह प्रातः उठकर अपने आगे दुवन्नियों और रुपयों का ढेर लगा लेता था। जो कोई उससे मांगता वह आंख बंदकर उसकी इच्छानुकूल एक मुट्ठी भरकर धन उसे देदेता। एक पुरुष ने छल से कई बार उस से धन मांगा और उसने बिना संकोच के दे दिया। जब वह ले चुका तो उसके मनमें बड़ी लज्जा आई और उसने सारा धन उस धनी को देदिया और हाथ जोड़ कर पूछा कि आप का गुरु कौन है, जिसने आपको इस उदारता से दान करना सिखलाया है ? धनी ने उत्तर दिया—

"देने वाला और है, जो देता दिन रैन"

हमारे पूर्वज गुप्त दान करना पुण्य समझते थे परन्तु हमारा देश पश्चिमी तरङ्ग में बहकर दान को भी अपने व्यवसाय की ख्याति का कारण समझता है।

काम, क्रोध, लोभ को जीत लिया परन्तु यदि आत्मा में सत्य नहीं तब भी कुछ न बनेगा। 'सत्य' क्या है ? शास्त्र बतलाते हैं "आत्मानम् सत्यम रक्षेत्" जिससे आत्मा की रक्षा होती है वह सत्य है। आत्मा की रक्षा तो होती है सत्य से, परंच हम चाहते हैं कि दिन रात ठग-विद्या और अधर्मयुक्त कार्यों के करने पर भी धर्मात्मा कहलायें और हमारी आत्मा का कल्याण हो। यह कदापि न होगा। पहले इन दोषों को दूर करो। इनको दूर करने के पश्चात् तुम्हारा जीवन शुद्ध हो जावेगा।

इसलिये पहले आत्मा की रक्षा करो। आत्मा के हनन होने के बाद न पुत्र रक्षा करेंगे न धन रक्षा कर सकेगा।

मोह क्या है ? "मोहन्तु अविद्या" अविद्या ही मोह है। जो अविद्या का आश्रय लेते हैं उनका कुछ नहीं बनता। एक पुरुष वेगवान वायु में बैठ कर लैम्प जलाना चाहता है, घण्टों यत्न करने पर भी लैम्प नहीं जलता। ज्यूंही एक विद्वान् आया और उसने

युक्ति बतलाई कि भाई, दीवार की ओट में जाकर लैम्प जलाओ। उसने ऐसा ही किया और उसी समय लैम्प प्रकाशमान हो गया।

वेदान्त शास्त्र कहता है कि लोग थोड़े से ज्ञान और सत्संग से आत्मा का कल्याण चाहते हैं, परन्तु हो कैसे ? शरीर की पांच नालियों से अज्ञान और अविद्या का प्रवेश होता है। इसलिये अविद्या और उसके संस्कारों को दूर करने का यत्न करो।

अहंकार—मैं बड़ा हूं, मुझ से बढ़ कर कोई नहीं यह अहंकार है। शास्त्र कहता है "आत्मनि आत्म अभिमान:"।

एक माता ने अपने पुत्र को अपने चर्खे का तकला दिया और कहा कि इसका टेढ़ापन निकलवा लाओ। वह गया और लुहार ने चोट लगा कर उसका टेढ़ापन निकाल दिया। अब वह लुहार से बल (टेढ़ापन) मांगता है। लुहार आश्चर्य में है कि यह क्या मांगता है ? निदान वह बालक माता के पास गया, माता ने उसे समझाया कि पुत्र ! तकले में बल पड़ गया था, लुहार ने चोट लगा कर सीधा कर दिया।

इसी प्रकार हमारी आत्मा में अहङ्कार से बल पड़ गया है। आवश्यकता है कि इसको चोट लगाकर सीधा किया जावे।

एक महात्मा रामकृष्ण हुए हैं जिन की स्मृति में उन का मिशन अब तक है। मृत्यु के समय अपने शिष्यों को बुला कर कहा कि मेरे पीछे मेरे मिशन को जारी रखना। उन्हीं के शिष्य विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ ने अमरीका आदि देशों में वह काम कर दिखाया कि संसार चकित हो रहा है।

भद्र पुरुषों ! विचारो कि हम दुष्ट भावयुक्त पुरुषों ने अपने आचार्य्य की आज्ञा का पालन कहां तक किया है ? हम तो घर से निकलना ही नहीं जानते। परन्तु बाहर निकले कौन ? गृहस्थ में रहते हुए बाल बच्चों की ममता नहीं छोड़ती। सन्यासी बनता

नहीं क्योंकि मन में यह अशुद्ध भाव बैठ गया है कि वृद्ध होकर सन्यास ग्रहण करेंगे। भला वृद्ध होकर सन्यास ग्रहण करने का क्या लाभ जब कि समस्त इन्द्रियां शिथिल हो जावेंगी। उस समय क्या काम कर सकोगे? बात यह है कि जिस पुरुष में दुष्टभाव हो, वह बहाने बहुत किया करता है। एक दिन ईसाईयों की मुक्तिसेना [सालवेशन आरमी] के कुछ पुरुष मुझे मिले। मैंने उन से पूछा कि आप ने सन्यास क्यों लिया? उन्हों ने कहा कि ईसा ने इंजील में लिखा है कि "मैं पिता को पुत्र से अलग करने आया हूं, मिलाने नहीं।" अब इस पर विचार करो कि ईसाई लोग तो सन्यास को धारण करें. परन्तु आर्य पुरुष सन्यास का नाम न लें। स्मरण रक्खो कि जब तक तुम में से सन्यासी न निकलेंगे तुम्हारे धर्म्म का प्रचार न होगा। क्योंकि सन्यासियों के बिना और कोई सीधी २ और खरी २ बातें सुना नहीं सकता। तुम संसार को उच्च और अच्छे विचार दो, संसार तुम्हारे चरणों में गिरेगा। परन्तु करे कौन? हम तो जगत व्यवहार में फंसे हुए हैं। हमें राज्य तथा बिरादरी का भय है, परन्तु परमात्मा का नहीं।

उचित तो यह था कि पहला स्थान परमात्मा और धर्म्म के भय को देते परन्तु हमने उसका तिरस्कार किया। जिसने धर्म्म का निरादर किया उसका कभी सत्कार नहीं हो सकता। भीतर की निर्बलता के लिये बाहर की दृढ़ता कुछ नहीं कर सकती। जिस लकड़ी को अंदर से घुन लगा हुआ हो उसे बाहिर का पालश कितनी देर तक स्थिर रख सकेगा। इसलिये सबसे पूर्व काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार पर विजय प्राप्त करके आत्मा को दृढ़ करो। जब आत्मा बलयुक्त हो गया तो सब कार्य्यों में हमें सफलता प्राप्त होगी।

श्री स्वामी सर्वदानन्द जी का
संक्षिप्त जीवनचरित्र

श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज अपने समय के एक आदर्श संन्यासी थे। त्याग का भाव जो एक सच्चे संन्यासी में होना चाहिये वह पूर्णरूप से इनमें विद्यमान् था। उनकी न किसी से विशेष मित्रता थी, न किसी से द्वेष। उनका जीवन इस बात की साक्षि देता है कि उन्होंने राग और द्वेष को जीता हुआ था, कुटिलता और पालिसी इनसे कोसों दूर थी। निर्भयता जो एक सच्चे संन्यासी का विशेष गुण शास्त्रों ने बताया है वह इनमें पाई जाती थी। आर्यसमाज का प्रेम इनके रोम २ में रम रहा था। वृद्धावस्था में भी धार्मिक जोश में आर्यसमाज का कोई नवयुवक उपदेशक भी उनका मुक़ाबिला नहीं कर सकता था। यदि आज बम्बई से उनके व्याख्यानों की रिपोर्ट आती थी, तो परसों पिशावर में गर्ज रहे थे। उनकी रातें रेल के सफ़र में कटतीं, और दिन उपदेशों में व्यतीत होते थे। उन्हें कभी यह ख्याल नहीं आया था कि अमुक जगह दूर है या अमुक जगह के सफ़र में कष्ट है। मान-अपमान के भाव को उन्होंने जीत लिया था। छोटी-से-छोटी समाज के उत्सव पर जहां पचास या सौ से अधिक श्रोताओं की उपस्थिति नहीं हो सकती, वे बराबर व्याख्यान देने जाते थे। उन की आवाज़ में इतनी गर्ज थी कि दस-पन्द्रह हज़ार के समूह में सब से अन्तिम पंक्ति में उपदेश सुनता हुआ पुरुष जिसको स्वामी जी का चेहरा भी न दिखाई देता हो, नहीं कहता था कि यह किसी वृद्ध की आवाज़ है। उनके व्याख्यान बहुत सारगर्भित पर साथ ही अत्यन्त सरल होते थे और प्रत्येक स्त्री-पुरुष की समझ में आ जाते थे, चाहे वह किसी मत से सम्बन्ध रखता हो। आर्यसमाज में प्रवेश करने के बाद उनकी आयु का बहुत-सा भाग संयुक्त प्रान्त

ISBN: 978-93-94372-11-5

में गुज़रा है और देर तक वही प्रान्त उनके कार्य का क्षेत्र रहा। क्योंकि वह समझते थे कि इस प्रान्त में काम की अधिक आवश्यकता है।

जन्म

श्री स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज बजवाड़ा, ज़िला होश्यारपुर के रहने वाले थे। उनका पहला नाम पं० मूलचन्द्र था। उनका जन्म एक ऐसे कुलीन ब्राह्मण घराने में हुआ जिसमें कई पीढ़ियों से हिकमत (वैद्यक) चली आई थी, इसी कारण स्वामी जी भी हकीम थे। जब तक गृहस्थाश्रम में रहे पौराणिक मत के अनुयायी रहे, शिवजी की पूजा बड़ी भक्ति और श्रद्धा से किया करते थे। बाग से स्वयं फूल लाते और एक २ करके शिवजी पर इस तरह चुनते कि सारा महादेव फूलों का दिखाई देता था। एक दिन जब दैनिक पूजा करने के लिये मन्दिर में गये तो क्या देखते हैं कि एक कुत्ता शिवजी की मूर्ति का, जिसको कल स्वामी जी अलंकृत करके गये थे, निरादर कर रहा है। मन को बड़ा दुःख हुआ, और उसी समय से संकल्प विकल्प उठने लगे। उसी दिन से शिव पूजा से ऐसी श्रद्धा उठी कि फिर कभी उस मन्दिर को नहीं देखा। मानो विचारों के परिवर्तन में स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज को वैसी ही घटना पेश आई जैसी महर्षि दयानन्द को शिवरात्री की रात पेश आई थी। वहां चूहा कारण बना था और यहां कुत्ता।

शिव-मूर्ति का पूजन छूटा तो वेदान्त की ओर रुचि हो गई। हिकमत के कारण कुछ तो पहिले ही अच्छी फ़ारसी जानते थे, अब फ़ारसी की अन्य पुस्तकें बोस्तां, मौलाना रूमी और बूअली क़लन्दर की मसनवियात आदि पढ़ने लगे, जिस से वेदान्त के ग्रन्थों में उनकी अच्छी रुचि और प्रवृत्ति हो गई। फिर वेदान्त के अनुष्ठान करने का विचार उत्पन्न हुआ और इस विचार के उत्पन्न होते ही गृहस्थ

को त्याग कर एक वेदान्ती संन्यासी से संन्यास ग्रहण कर लिया। उस समय स्वामीजी की आयु ३२ वर्ष के लगभग थी।

संन्यास लेने के पश्चात्

संन्यास लेने के पश्चात् स्वामीजी तीर्थयात्रा को चले गये और चार वर्ष में समस्त तीर्थ कर डाले। अब वह वेदान्त में कुछ ऐसे मग्न हुए कि कई बार अपने आपको भी भूल जाया करते थे। एक बार अपने विचार में वह ऐसे लीन हुए कि तीन दिन तक समाधि लगी रही और कुछ खाया पिया नहीं। भूख को सहन करने की शक्ति तीर्थ-यात्रा के समय बहुत बढ़ गई थी। जब द्वारका से तीर्थ करके आये तो बड़े विकट जंगल में से गुज़रना पड़ा जहां पर खाने पीने के लिये कुछ न मिलता था। कदाचित् तीन चार दिन के पश्चात् सिद्धेश्वर के पास जाकर जौ का आटा खाने को मिला, जिसे स्वामीजी ने भूख निवृत्त करने के लिये खा लिया। तीर्थ-यात्रा के सफ़र में एक आदमी ने कहा कि स्वामीजी अगर लड्डू पेड़े खाने हैं तो उदयपुर के राज्य में जाओ, वहां साधु सन्तों का बहुत सत्कार होता है। मन में मौज आ गई और उसी ओर का रास्ता लिया। कुछ दिनों तक वहां रहे, फिर वहां से चल दिये और मथुरा के बाहर एक सेठ के मकान पर आकर ठहरे। स्वामीजी के साथ एक दो अवधूत महात्मा भी थे, वे भी इनकी तरह मस्त मौला रहा करते थे। एक अवधूत ने शहर में जाकर एक वैश्य को पकड़ लिया और कहा कि शहर के बाहर सन्त आये हैं, उनका सत्कार करो। वैश्य ने बड़े प्रेम से सन्तों को भोजन कराया। अगले दिन भी यह तीनों साधु मिलकर उस वैश्य के घर जा डटे और कहा भूख लग रही है, सन्तों को भोजन कराओ। आखिर उसको मानना पड़ा और इनको अपनी बैठक में बिठला दिया। अब लगे सन्त रोटी की इन्तजार करने, तीन घंटे व्यतीत हो गये कोई

रोटी पूछने न आया इन सन्त महात्माओं ने समझा कि आज तो वैश्य ने मज़ाक किया है. परन्तु थोड़ी देर के बाद एक आदमी ने आकर हाथ धुलाए और चला गया। फिर इन्तज़ार होने लगी और आपस में हँसी ठट्ठा करने लगे कि आज अच्छा सेठ मिला है। इतने में बड़े सुन्दर थाल तौलियों से ढके हुये आये और सन्तों के सामने रखकर नौकर भाग गया। सन्त सोचने लगे कि यह क्या बात है? भूख तो लगी ही थी तौलिया उठा कर देखा तो देखा कि उनमें बहुत देर के सड़े-भुने चने हैं जिनमें सुसरी पड़ रही है। इसपर खूब हँसी उड़ी। इतने में वह वैश्य भी ऊपर आया और कहा, महाराज! मेरे नौकर से अपराध हुआ मुझे क्षमा करें!

सत्यार्थप्रकाश का चमत्कार

वेदान्त की मस्ती में ऐसी २ घटनाओं से पार होते हुए स्वामी जी चित्रकूट में आये, और यहां पर कुछ मास ठहरे रहे। वहां सरदियों के दिनों में यमुना के किनारे नंगे पड़े रहा करते थे। इन्हीं दिनों में उनको एक बीमारी लग गई जो अन्त तक कभी २ उनको सताया करती थी, अर्थात् छाती और कटि का दर्द। यहां स्वामी जी बड़े तप का जीवन व्यतीत करते थे। वह २४, २४ घंटे तक अपने विचारों में लीन रहा करते थे; भोजन का विचार आया और मिल गया तो खा लिया, नहीं तो मस्ती में बैठे हैं। एक बार कुछ बीमार हो गये। इसकी सूचना गांव के एक ठाकुर को मिली जो स्वामी जी का सेवक था किन्तु धार्मिक विचारों में वह अपने इलाक़े में एक ही आर्यसमाजी था और स्वामी जी नवीन वेदान्ती थे। उसने आकर औषधि आदि द्वारा स्वामी जी की खूब सेवा टहल की, जब नीरोग हो गये तो मन में इच्छा हुई कि यहां से चलें। अपने सेवक को मिलने को बुलाया, वह आते समय अपने साथ एक पुस्तक ले आया और पहले तो कुछ देर और ठहरने के लिये प्रबल इच्छा प्रगट की, किन्तु जब देखा

कि नहीं मानते तो निवेदन किया कि महाराज ! यदि मेरी सेवा से आप प्रसन्न हैं तो इस पुस्तक को ग्रहण कीजिये और यथासम्भव इस का आदि से अन्त तक अध्ययन करने की कृपा करें।

स्वामी जी ने पुस्तक को ले लिया जो कि बड़े सुन्दर रेशमी रूमाल में लपेटी थी और प्रतिज्ञा की कि वह इसको अवश्य पढ़ेंगे। यह कह कर वहां से गोरखपुर की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में विचार आया कि देखें तो सही यह कौन सी पुस्तक है जो हमारे भक्त ने इतने सुन्दर वस्त्र में लपेट कर दी है। खोल कर देखा तो वह आर्य्य भाषा में सत्यार्थप्रकाश की एक सुन्दर प्रति थी। स्वामी जी ने इस पुस्तक का नाम सुना हुआ था और वह इससे अत्यन्त घृणा करते थे तथा नवीन वेदान्ती होने के कारण वह इस पुस्तक को देखना तक पसन्द न करते थे। किन्तु अपने सेवक को वचन दे चुके थे, इसलिये, और दूसरे यह भी मन में आया कि चलो देख तो लें इसमें क्या लिखा है सत्यार्थप्रकाश को पढ़ना आरम्भ किया और प्रतिदिन निरंतर पढ़ते रहे, जब तक इसको समाप्त न कर लिया। सत्यार्थप्रकाश का समाप्त करना था कि स्वामी जी कुछ और के और बन गये। अब नवीन-वेदान्त का भ्रम दूर हो गया। सत्यार्थप्रकाश के पाठ ने उनके जीवन में ऐसा चमत्कार दिखलाया कि जहां वह पहले पक्के वेदान्ती थे, वहां अब पक्के आर्य्यसमाजी बन गये।

आर्यसमाज के कार्यक्षेत्र में

अब मन में वैदिक धर्म्म के प्रचार की लग्न लग गई और झूठे मत-मतान्तरों का खण्डन आरम्भ कर दिया। किन्तु पूरे तौर पर वैदिक धर्म्म के ज्ञान के लिए संस्कृत भाषा और वैदिक साहित्य के ज्ञान की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। इसलिये संस्कृत और वैदिक साहित्य का अध्ययन आरम्भ कर दिया। जहां भी कोई योग्य पण्डित मिला, वहां उससे पढ़ लिया।

पांच साल में सिद्धान्त कौमुदी, न्याय, सांख्य, कारिका, वेदान्त पर शंकर भाष्य आदि पुस्तकें पढ़ लीं। इसके अनन्तर स्वामी जी ने समस्त अन्य ग्रन्थों और उपनिषदों का पाठ कर लिया। इस प्रकार वृद्धावस्था में बड़ी मेहनत और परिश्रम से संस्कृत और वैदिक साहित्य में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली और अन्त समय तक जब भी समय मिलता था अपनी योग्यता को बढ़ाने का यत्न करते थे।

वैदिक धर्म प्रचार के लिये अपने में अच्छी योग्यता धारण कर के स्वामीजी २० वर्ष निरन्तर देशभर में वैदिक शिक्षा का प्रचार करते रहे। दिन और रात उन्हें वैदिक धर्मप्रचार की लगन लगी रहती थी। बीमारी और तकलीफ़ के दिनों में भी उन की आत्मा आर्य-समाजों में ही घूमती रहती। आर्यसमाज में बहुत कम व्याख्यानदाता ऐसे होंगे जो दो अढ़ाई घण्टे तक निरन्तर बोल सकते हों। कई २ स्थानों पर स्वामी जी को एक दिन में तीन २ बार बोलना पड़ता था। किन्तु उन्होंने कभी नां नहीं की। विकट से विकट और छोटी से छोटी जगह में स्वामी जी जाने को तैयार रहते थे यदि उन्हें जताया जावे कि वहां प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है।

अछूतों के लिये स्वामी जी के मन में अत्यन्त प्रेम था। उनको उठाने और उन्नत करने के लिये वह अपने हर व्याख्यान में कुछ न कुछ मिण्ट देते थे।

इनके व्याख्यान दिन प्रतिदिन सर्वप्रिय होते गये। आर्यसमाज में काम करने वालों की न्यूनता को अनुभव करके स्वामी जी ने हरदुआगंज, ज़िला अलीगढ़ में एक साधु-आश्रम खोल दिया जिस में साधुओं की शिक्षा दीक्षा का काम होता है। इस समय तक कई संन्यासी इस आश्रम से तैयार होकर आर्यसमाज का काम बड़ी सफलता से कर रहे हैं।

यह है स्वामी जी का संक्षिप्त शिक्षादायक जीवन चरित्र। आशा है कि आर्य्य भाई इससे बहुत सी शिक्षा ग्रहण करेंगे!